

मेरे जेल के अनुभव ।

हे यह कारागार पूज्य अति शय मेरे हिते
जहा जन्म ले किया दुष्ण ने था दुख मोचित ॥

महात्मा गाधी लिखित ।

प्रकाशक -
शिवनारायण मिश्र,
"प्रताप कार्यालय"
कानपुर ।

प्रताप प्रेस, कानपुर में मुद्रित ।

द्वितीय संस्करण

२०००

१९७५

{ १ भाग }
{ ॥

२९२५

सूची ।

मेरे जेल के अनुभव ।

प्रथम बार ।

पेदेखाना—काफिर और भारतीय एक—अन्य भारतीय कैदी—रहने का स्थान—सफाई—कुछ नियम—बेख—भाल—हिन्दुस्तानी कैदियों की वृद्धि—भोजन—रोगी—स्थान की कमी—पठनपाठन—कवायद—भेंट—धर्म की शिक्षा—अन्त । १—२७

दूसरी बार ।

प्रस्तावना—गिरफ्तारी—जेल में हमारी दशा—जेल का प्रबन्ध—भोजन—पक्की जेल मिली—पोशाक—काम—जोहान्सबर्ग को तवादला—डाकूरी जाँच, नगे कैदी—जोहान्सबर्ग से वापसी—हिन्दुस्तानी कैदियों का दृश्य—मेली मुलाकाती—फुटकर विचार—धर्म सकट—काफिरों के भगड़े—जेल में बीमारी—कुछ विघ्न बाधाएँ—जेल में कौन जा सकता है—पढाई—दो प्रकार के विचार । २८—६१

तीसरी बार ।

वोकसरस्ट—वोकसरस्ट क्यों छूटा—प्रियोरिया की जेल में, शुरुआत—भोजन—काम की बदली—और और रद्दोबदल—डिरेक्टर से मुलाकात—हथकड़ी पहनाई गई—सत्याग्रह की महिमा—मने क्या पढा—तामिल की शिक्षा—प्रसूहार । ६२—८१

५५

दो बातें

—००—

हमें इस बात की आवश्यकता नहीं मालूम होती कि यहा इस पुस्तक के लेखक महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी का परिचय दिया जाय, क्योंकि उनकी कीर्ति-कौमुदी केवल भारतवर्ष ही में नहीं बल्कि सारे संसार में प्रकाशमान है। हा, इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में इतना कहा जा सकता है कि यह पुस्तक उस महात्मा की लिखी हुई है जो न केवल सदा देश और जाति के नाम पर कारागार को अपना पूज्य देगालय मानता रहा है या जिसका 'जन्म दुखियों' के दुख दूर करने और निर्मलों की सहायता के लिए हुआ है, चरन रलवानों और अन्यायियों को बदला देने के लिए भी, मगर घुम्ने का जवाब घुम्ने से न देकर, बरिक्त चुपचाप और भी अधिक अन्याय सहते हुए, तथा जिसने 'सफलता की कुजी' अन्याय और जुर्म सहने—सत्याग्रह—को ही मान रखा है और जिसका विश्वास है कि, "भारतीय जाति को जेल द्वारा अभी कितने ही अधिकार प्राप्त करने पड़ेंगे", जिसका यह भी बढ विश्वास है कि यदि हमें सफलता नहीं प्राप्त होती तो यह हमारी अन्याय सहने की शक्ति की कमी—हमारे सत्याग्रह की कमजोरी—है। महात्मा को अपने इन्हीं सिद्धान्तों के लिए दक्षिण अफ्रिका में कई बार जेल जाना पडा था।

इस स्थान पर यदि इस बात का वर्णन संक्षेप में कर दिया जाय कि किन कारणों से—किन असुभीतों—काण्डों को दूर करने के लिए—महात्मा जी को जेल जाना पडा था,

तो अनुचित न होगा, बल्कि एक प्रकार इस से पाठकों की ज्ञान-वृद्धि ही होगी।

भारत से कितने ही कुली प्रतिवर्ष दक्षिण अफ्रीका का भेजे जाते थे। भारत-सरकार की सम्मति से ट्रान्सवाल की सरकार ने यहां के शर्नवन्द भारतीय मजदूरों पर प्रतिवर्ष ३ पाउंड का कर लगाया था। फिर १९०७ ईसवी में एक और कानून 'एशियाटिक एक्ट' बना। १९०८ ईसवी से उस का व्यवहार किया जाने लगा। यह कानून बड़ों ही अपमानजनक था। उसके अनुसार १६ वर्ष से अधिक अवस्था वाला प्रत्येक भारतवासी अपना नाम रजिस्टर कराने पर बाध्य था। तर्ह तर्ह से भारतीयों की १८ अंगुलियों की छाप ली जाती थी। उनके लिए 'कुली' शब्द का उपयोग उसमें खुल्लम खुल्ला किया था, यद्यपि वहां प्रतिष्ठित, सभ्य, सुशिक्षित और धन सम्पन्न भारतवासी भी कितने ही ह। उनको "एशियाटिक रजिस्ट्रेशन साटिफिकेट" नामक एक परवाना हमेशा साथ रखना पड़ता था। इस कानून से भङ्ग करने वाला भारी से भारी सजा का पात्र समझा जाता था। इस अमानुषिक, अपमान-जनक और निर्दयता तथा अन्याय-मूलक कानून का तीव्र विरोध वहां की भारतीय जनता ने किया - विलायत तक डेपुटेशन भेजा गया - पर नतीजा कुछ न निकला। कानून पास हो गया, और सम्राट एडवर्ड ने भी उसे पसन्द कर लिया। उस फिर क्या देर थी। अफरीका-स्थित भारतवासियों ने कर्मवीर महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ ली। समस्त नर-नारियों और बालकों तक ने इसमें योग दिया। सैकड़ों आदमी पशुओं की तरह जेल में ठँस दिये गये। महात्मा गांधी को भी जनरली

और अगस्त १९०८ में दोयार, जेलखाने की हवा, खानी पड़ी— इतना होने पर भी—भारतवासियों के इतना प्रतीकार करते पर भी—वहाँ की सरकार उस से मसन हुई। १९११ तक यही अधाधुन्धी जारी रही। इसी बीच भारत में भी सूबे, आन्दोलन किया गया। तब टान्सवाल सरकार ने एक बाल चली। उसके—रुता रता जनरल स्मट्स ने महात्मा गांधी को बुलाया और कानून में सुधार करने का अभिप्राय देकर, उनका नाम रजिस्टर्ड करा लिया। गांधी, जी तो ठहरे—पूरे महात्मा। वे "आत्मवत्, सर्वभूतेषु" के कायल हैं। उन्होंने कहा—इतना बड़ा उच्च अधिकारी क्या दगाजाजी करेगा? उसके वचन पर विश्वास करके, उन्होंने इस शर्त पर कि यह कानून रद्द कर दिया जाय अपना नाम रजिस्टर करा लिया। अन्य भारतवासियों ने भी ऐसा ही किया। पर सरकार, ने कानून में कुछ भी रद्दोदल न किया, उसे ज्यों का त्यों कायम रक्खा। अब नौ लोगों के क्रोध का पारावार न रहा। वे फिर से सत्याग्रह का झण्डा खड़ा करने को इरादे में ही थे—कि, १९१२ में स्वगाय गोखले यहाँ पधारे। टान्सवाल—सरकार ने, उनसे, वादा किया कि हा, कानून में सुधार कर दिया जायगा। पर किया करायो कुछ नहीं? झूठ बोल कर अपना काम चला लेने में तो यहाँ की सरकार अपनी कुछ हानि समझती ही नहीं। कानून में सुधार करना दूर रहा १९१३ में उसने एक नया कानून बना डाला। उसने, यह कानून क्या बनाया, भारतवासियों के घायों पर नमक छिड़क, दिया। उसके अनुसार सिन्धी, भारतवासी को, कालोनी में जा सकते थे जो अंगरेजी भाषा के बड़े परिचित हों। इसके पहले, वे आजादी से बचा जा आ सकते थे। फ्री स्टेट में जाने वाले भारतवासियों को

(४)

यह लिख देना पड़ता कि वहा जाकर हम व्यापार, और खेती-
धारी न करेंगे। केवल मजदूरी करके अपना गुजर करेंगे। सब
से बड़ी आक्षेप योग्य और हृदय पर चोट पहुंचाने वाली बात
यह थी कि जिस धर्म में एक से अधिक विवाह कर लेने की
रीति है उस धर्म के अनुसार किया हुआ विवाह अप्रामाणिक
माना जाता। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान को अपना विवाह
न्यायालय में जाकर रजिस्टर्ड कराना पड़ेगा अर्थात् उनकी
द्विधा रखेली समझी जायगी। इस कानून के भी खिलाफ
भारतवासियों ने अपनी आवाज उठाई। पर उसकी कुछ भी
परवा न की गई और कानून पास हो गया। वस, फिर से
सत्याग्रह आरम्भ कर दिया गया। इसमें फिर तीसरी बार
महात्मा जी को जेल जाना पड़ा। इस बार यह आन्दोलन क्या
अफ्रिका क्या भारत सब कहीं, बड़े जोर शोर से फूला। तब
एक कमीशन बैठाया गया। उसमें योग देने के लिए महात्मा
गांधी छोड़ दिये गये। अन्त में कमीशन की सूचना के अनुसार
२ जून १९१४ को सरकार ने एक " इंडियन रिलीफ बिल "
बनाया। जुलाई १९१४ में समाज ने भी उसकी स्वीकृति दे दी।
तब जाकर इतनी हाय-हत्या के बाद उनकी अधिकांश शिका
यतें दूर हुईं। अस्तु।

इस से पाठक महात्मा जी के बार बार जेल जाने का
कारण भली भांति समझ गये होंगे। जेल में उन्हें क्या तकलीफ
और आराम मिला तथा भारतवासी कैदियों के साथ वहा
कैसा सलूक किया जाता है इसका जो अनुभव उन्हें जेल में
हुआ उसी का सविस्तर वर्णन महात्मा जी ने अपनी ही
कॉलम से आगे के पन्नों में किया है।

यह इस पुस्तक का हिन्दी में दूसरा संस्करण है। प्रथम संस्करण में इस पुस्तक का मूल्य आठ आने रखा गया था किन्तु इस विचार से कि इस पुस्तक का जितना अधिक प्रचार हो उतनाही अच्छा है, और यह तभी हो सकता है जब पुस्तक सस्ती हो। अतः कागज आदि की इतनी महंगी होने पर भी ॥५ के बजाय ॥२॥ आना मूल्य कर दिया गया है। हम आगे कागज आदि के मूल्य में कमी होते ही और भी सस्ता संस्करण निकालेंगे। अन्त में हम महात्मा गान्धी जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन की हमें सहर्ष आज्ञा दे दी।

प्रताप कार्यालय
कानपुर
२२-३-१८

विनीत,
प्रकाशक।

ॐ नमः

मेरे जल क अनुभव ।

१९१७

प्रथम सस्करण—जुलाई १९१७ ई०

द्वितीय सस्करण—मार्च १९१८ ई०

महात्मा गांधी
लिखित

मेरे जेल के अनुभव

[प्रथम वार]

मैं तथा मेरे अन्य भारतवासी भाइयों ने थोड़े ही दिन जेलगाने को टया खाई है। तथापि, उतनी ही अधि में जो कुछ अनुभव मुझे वहा प्राप्त हुए हैं वे औरों के लिए भी उपयोगी हें। लोगों ने उनके जानने की उत्सुकता भी प्रकट की है। अतएव मैं उन्हें प्रकट करता हूँ।- लोगों का यह सवाल है कि भारतीय जाति को जेल द्वारा अभी कितने ही अधि-कार प्राप्त करने पड़ेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि लोग जेल के दुःखों और सुखों से जानकार हो जाय। कितनी ही वार तो लोग अपनी ही कल्पना से उस दशा को भी दुःख-मयी मान लेते हैं जो वास्तव में बेसी नहीं। इस से यह स्पष्ट सात होता है कि प्रत्येक वस्तु या विषय के सत्य-ज्ञान से लाभ ही है। अच्छा, तो अब हमारी काराकहानी सुनिए -

१० जनवरी सन् १९०० के दोपहर को दो वार हमारे जेल में धाध दिये जाने की गप उड़ी और अत में वह वक्त था ही गया। मेरे साथियों को और मुझे सजा दी जाने के पहिले प्रिटोरिया (टान्जाल) में नार आ गया था। उनमें लिखा था कि गिरफ्तार-शुदा अर्थात् पकड़े गये

द्विदुस्नानी गये कानून के आगे मिर भुखाने को तैयार नहीं हुआ, अतएव उन्हें तीन महीने की कड़ी कैद की सजा दी गई। अर्ध-दण्ड भी उन्हें दिया गया। यदि जुर्माना न दागिल करे तो और तीन महीने कैद भोगने की आज्ञा थी। यह सुन कर मैं दुगिन हुआ। मैंने मैजिस्ट्रेट से अधिक से अधिक सजा मागी, पर वह न मिली। हम सब को दो महीने की सजा दी गई। मरे साथ मिस्टर् पी० जे० नायट, मि० सी० एम० पिब्ले, मि० कडवा, मि० ईस्टन तथा मिस्टर् फोरट्रन थे। पिछले दो सज्जन चीनी हैं। सजा मिल चुको पर मैं अदालत के पीछे घाले फेंकना में दो चार मिनट तक रक्का गया। इसके बाद मैं चुपचाप एक गाड़ी में बिठाया गया। गाड़ी रवाना हुई। उस समय मेरे मन में कितनी ही तरङ्गें उठीं। क्या किसी दूर स्थान में ले जाकर सानैतिक कोदियों का सा वर्ताव मेरे साथ किया जायगा ? क्या और लोगों से मैं अलग रक्का जाऊंगा ? या क्या मुझे 'बोहान्सवर्ग' के सिवा और कहीं ले जायगे ? ऐसे कितने ही विचार मेरे मन में आये। मेरे साथ जो जास्स सिपाही था वह मुझ से माफी माग रहा था। मैंने कहा कि मुझ से माफी मागने की जरूरत नहीं, क्योंकि मुझे जेतागाने में ले जाना तो तुम्हारा कर्तव्य ही है।

कैदखाना।

मुझे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि मेरी तरफें व्यर्थ थीं। क्योंकि जहा और कैदी गये थे वहीँ मुझे भी जाना पडा। थोड़ी ही देर में और साथी भी आ गये। हम सब मिले। बहिले तो हम सब तौले गये। फिर सब के अगूठे की निशानी दी गई। इसके बाद सब नगे किये गये। तब हम जेल की

पोशाक दी गई। पोशाक में इतनी चीजें हमें मिलीं—काली पतलून, कमीज, कमीज के ऊपर का कपड़ा (जिसे अंगरेजी में 'जपेर' कहते हैं), टोपी और मोजा। फिर हमें एक बैली दी गई। उसमें हमारे पुराने कपड़े रक्खे गये। तब हमें अपनी कोठरियों में भेजा गया। भेजने के पहिले प्रयेक को आठ आंस रोटी के टुकड़े दिये गये। फिर हमें काफिरों के कदमने में ले गये।

काफिर और भारतीय एक।

यहां हमारे कपड़ों पर "X" यह छाप लगाई गई। अर्थात् हम 'नेटिगों' की पक्ति में रक्खे गये। हम सब तकलीफें सहने को तैयार थे पर यह नहा जानते थे कि हमारी ऐसी दुर्गति होगी। गोरों के साथ न रक्खा जाना तो हमें न गलता परन्तु ठेठ काफिरों के साथ रहना हमें परदास्त न हुआ। यह देख कर हमने सोचा कि सत्याग्रह की लड़ाई जैसे महत्व की है वैसे ही वह समय पर शुरू भी हुई है। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि यह कानून क्या है मानों भारतीयों को पूर्णतः तहस-तहस करने वाला सूनी शस्त्र है। हम काफिरों के साथ रक्खे गये, यह भी अच्छा ही हुआ। उन लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार इत्यादि बातें जानने का यह बहुत अच्छा मौका मिला। दूसरे हमें यह भी ठीक न जचा कि उन लोगों के साथ रहने में हम अपनी हतक समझें। तथापि स्नाथारण रीति में यही कहना पडता है कि भारतवासियों को अलग ही रखना चाहिए। हमारी कोठरियों के बगल में ही काफिरों की कोठरियाँ थीं। उनमें तथा गहर के मदान में वे कोहराम करते हुए पड़े रहते थे। हम लोग बिना मजदूरी के बैदी थे अर्थात् हमें सादी

सजा मिली थी—हम से मजदूरी नहीं कराई जाती थी—अतएव हमारी कोठरिया जुदी जुदी थीं । अन्यथा हम भी उन्हीं में ठूसे जाते । सख्त सजा घाते भारतीय कैदी काफिरों के ही साथ रखे जाते ह ।

इससे हतब होती है कि नहीं, इस विचार को छोट दें तो भी इतना कहना काफी है कि यह काम जोरों का है । काफिर अधिकांश जङ्गली होते ह । फिर क़ेदखाने में आये हुए काफिरों का तो पछना ही क्या ? ये बड़े नटपट और बहुत गन्दे होते ह । प्रायः जावरों की तरह रहते हैं । एक एक कोठरी में ५०-६० आदमी तब ठूसे जाते ह । कभी तो वे शोर-गुल मचाते और कभी टाटते-भिडते भी ह । ऐसी स्थिति में बेचारे हिन्दुस्तानियों की क्या दुर्दशा होती होगी पाठक, सहज ही इसका अनुमान कर सकते ह ।

अन्य भारतीय कैदी ।

सारे क़ेदखाने में, हमें छोट कर, दो ही चार और हिन्दुस्तानी कैदी थे । उन्हें काफिरों के साथ कोठरी में बंद होना पड़ता था । तथापि मने देखा कि वे प्रसन्न रहते थे, और जब वे बाहर थे अर्थात् क़ेदखाने में न थे तब से उनकी तबियत अत्यन्त अच्छी थी । उन्होंने प्रधान जेलर की कृपा प्राप्त कर ली थी । वे काम करने में भी तेज और होशियार थे । अतएव उन से जेल के अन्दर ही काम लिया जाता था । मो भी 'स्टोर' की मशीनें इत्यादि की देख-रेख तथा ऐसे ही काम जो न तो उन्हें अखरते ही थे और न मैले ही थे । वे हमारे भी बड़े सहायक हो गये थे ।

रहने का स्थान ।

हमें एक कोठरी सापी गई । उसमें १३ आदमियों के रहने की जगह थी । उन कोठरियों पर लिखा था—“काले

क़र्जदार कैदी ।" शायद इन कोठरियों में दीवानी मामलों में सजा पाये हुए कैदी रखे जाते होंगे । उनमें प्रकाश और हवा के लिए दो छोटी सी खिड़किया थीं जिनमें लोहे के मजबूत साकचे लगे हुए थे । कोठरी में जितनी हवा आती थी, मेरे खयाल में, काफी न थी । कोठरी की दीवारों पर तीन जडा हुआ था । इन में आधे आधे इञ्च के तीन मृगरथ थे, जिनमें काच जडे हुए थे । जेलर उनमें छिपे छिपे तार कर देखा करते कि कदी क्या करते हैं । हमारी कोठरी से लगी हुई जो कोठरी थी उसमें काफिर कैदी थे । उनके सग काफिर, चीनी और 'केप्लोय' गवाह थे । वे सब एक सग इस लिए कैदखाने में रन्धे गये थे कि कहीं भाग न जाय ।

हम सब के दिन में घूमने फिरने के लिए एक छोटी सी गली या परामदा था । उस के आस पास दीवार थी । गली इतनी तग थी कि उस में घुमना-फिरना कठिन सा था । सीमा-प्रान्त के कैदियों के लिए तो यह नियम था कि वे बिना इजाजत गली के बाहर न जाय । खान तथा पाखाने की जगह उसी परामदे में थी । खान के लिए पत्थर के दो बडे होज थे और नहाने के लिए दो फव्वारे, दो टट्टिया और दो पेशाव-खाने । उन में परदे का कोई प्रबन्ध नहीं था । जेल के कानून में भी यह नियम था कि पाखाने ऐसे होने चाहिए कि जिन में कदी अलग न रह सकें । अतएव दो तीन कैदियों को एक ही कतार में पाखाने के लिए बैठना पडता था । स्नान-घर का भी यही हाल था । पेशावखाना तो खुली जगह में ही था । यह सब हमको पहिले पहल असह्य मालूम होता था । कितनों ही को ता इससे बडी धिन और तकलीफ होती थी । तथापि गहरा विचार करने पर यह जान पडता है कि जेलखाने में ऐसे काम

गानगी तौर पर नहीं किये जा सकते और जाहिरा तौर पर करने में कोई गान्न दोष नहीं। अतएव धीरज रज पर ऐसी आवत डालने की जरूरत है। और हमने घण्डाने अथवा गिन करने या ऊपर उठने की आवश्यकता नहीं।

कोठरी के अन्दर, सोने के लिए, तीन इंच ऊंचे पाये वाली ताम्बे के तम्बों की चोकिया थीं। हर आदमी को पीछे से कम्यल और एक छोटा सा तकिया तथा पिछौने के लिए एक चटाई दी गई थी। कभीकभी तीन कम्यल भी मित जाते थे। परन्तु यह मेहरबानी के तौर पर। ऐसे बड़े पिछौने से कितने ही लोग घण्डाते देखे जाते थे। साधारणतः जिसे मुलायम सेज पर सोने की आवत हो, उसे ऐसा गुरदुरा कडा पिछौना गलता है। बचकशास्त्र के नियम के अनुसार कडा पिछौना ही अच्छा समझा जाता है। अतएव यदि पर में भी हमें बड़े पिछौने ही पर सोने की आवत हो तो जेल के बच्चोने से तफलीफ नहीं होती। कोठरियों में हमेशा एक घड़ा पानी और रात में पेशाब करने के लिए कुछ पानी अलग दिया जाता था। क्योंकि रात में कोई कैदी राहर नहीं निकल सकता। हरेक आदमी को आवश्यकता के अनुसार थोड़ा सा साबुन, एक गजी की तोलिया तथा एक लकड़ी का चमचा भी दिया गया था।

१ - १० - सफाई ।

जेलघाने में सफाई बहुत अच्छी होती है। कोठरी की फर्श हमेशा जलु-नाशक (Phenyl) पानी से धोई जाती थी। उनमें हर रोज चूना पोता जाता था जिस से ये हमेशा नई मालूम हों। हममाम और पागाने भी नित्य 'साबुन तथा जलु-नाशक पानी (Phenyl) से 'साफ किये' जाते 'थे।

। सफाई का तो मुझे स्वयं शौक है। जब कई सत्याग्रही कैदों का वाद में उद्गृत गये तब मैं मन्त्रय जन्तु-नाशक पानी (Ph. nyl) से पागाना धोता। पागाना उठाने के लिए हमेशा नौ बजे मिलने ही चीनी बंदी आते थे। उस के बाद यदि दिन में पागाना साफ करना होता तो अपने ही हाथों से सफाई करती पड़ती थी। पत्थर की चौकियां हमेशा रेंती और पानी से धोई जाती हैं। अडवन मिर्क एक बात की है कि कैदियों में कम्यल और तकिये उदल जान की बहुत सम्भावना रहती है। रोज धूप में कम्यल चुगाये जाने का नियम है। पर शायद हा इसका पालन किया जाता हो। जेल की गलियां हमेशा दो बार साफ की जाती थीं।

कुछ नियम।

जेल में मिलने ही नियम मन्त्र लोगों के जानने योग्य हैं। शाम को साढ़े पाच बजे सब कैदी उन्द कर दिये जाते हैं। आठ बजे रात तक घे पठ और बातचीत कर सकते हैं। आठ बजे के बाद सब को सो जाना पड़ता है। यदि नांद न आती हो तो भी चुपचाप पटे रहना चाहिए। आठ बजे के बाद ग्रीच २ में रात करना जेल के नियम को भङ्ग करना है। काफिर कैदी इस नियम का यथोचित पालन नहीं करते। अतएव रात के पहरेदार उन्हें चुप करने के लिए "ठुला, ठुला" कह कर दीवारों पर लाठी ठोका करते हैं। कैदी को बीड़ी पीने की सरत मुमायित है। इस नियम की पाबन्दी उड़ी सरगर्मी से की जाती है। पर मैं देखता था कि बीड़ी पीने के आदी कैदी दूधे-दुधे इस नियम का उल्लंघन करते थे। सबेरे साढ़े पाच बजे उठने का घण्टा बजता है। उस समय प्रत्येक कैदी को उठकर हाथ मुह जो लेना और अपना बिछौना समेट

लेना चाहिए। सबसे छु बजे कोठरी का दरवाजा खुलता है। उस समय प्रत्येक फँदी समेटे हुए बिल्लों के पास अदर के साथ बड़ा मिलना चाहिए। रक्षक आकर प्रत्येक फँदी का गिन जाता है। इसी तरह कोठरी बंद करते समय हर एक फँदी को बिल्लों के पास बड़ा रहना चाहिए। बिचा फँद गाने की आँसु फँदी की कोई चीज फँदी के पास न होनी चाहिए। कपड़ों के बिचा आँसु फँद यन्तु गयारंग की आवाजिया पास बगो की मनाती है। हर एक फँदी के ऊपरी कपड़े क एक बदन पर एक छोटी सी रैली मिलती रहती है। यन्तु फँदी का टिकट रहता है। टिकट पर उसका नम्बर, मज्जा का घोगा, उसका नाम, इत्यादि पान लिगी रहती है। साधारण नियमों के अनुसार बिचा कोठरी में रहने की आवाज है। जिसे काम पर जाता जाता है ये गो कोठरी में रह ही नहीं सफे। परन्तु बेकार फँदी भी नहीं सम्भन। उन्हें गतियों में रहना पड़ता है। हमारे मुर्नात क तिल गयारंग ने एक मेज़ आँसु का बँचें काठरी में बगो की इत्तान्त की थी। उनसे हमें बड़ा आनन्द मिला।

विष्णु है कि सा मर्ता की मज्जा पाल फँदी के पास आँसु मुँद काट जाती जाय। कि दुर्गातियों पर इसका व्यवहार बर्नी में नह। किया जाता। सा इत्तान्त करता है, उसकी मुँद रहने की जाती है। इस नियम की एक दिक्कती मुनिष। भी गो कपय जानता ही था कि फँदियों क पास बज्याय जाय है। और यह भी बज्याय थी कि ये पास फँदियों क टागण क निष कराय जाये है। ये इस नियम का कायम है। मुझे यह नियम कपयक मान्य जाता है। जलना। में कपिया इत्यादि बज्याय बज्याय की बँदियों का निषन। नहीं, और पास कपय

साफ न रस्ते जाय ता फोडे- फुन्सी होने का डर रहता है । फिर भी गर्मी के दिनों में तो बाल असह्य हो जाते हैं । केंदियों को आईना मिलता नहीं । मूछ मैली या गन्दी होने की सम्भावना प्रती रहती है । राते समय रुमाल भी नहीं होता । लफ्डी के चमचे से खाने में दिक्कत पड़ती है । लम्बी मूछ हो तो जूटन मूछ में ही चिपकी रहती है । मैं चाहता था कि कैद का पूरा अनुभव किया जाय । इस लिए मैंने मुख्य दागगा से कहा कि मेरे बाल, और मूछ कटवा दीजिए । उसने कहा, गवर्नर ने सरत मुमानियत की है । मैंने कहा— मुझे मालूम है कि गवर्नर मुझे बाध्य नहीं कर सकते, परन्तु मैं तो अपनी राजी से बाल कटवाना चाहता हूँ । उसने कहा— गवर्नर से अर्ज करो । दूसरे दिन गवर्नर ने आज्ञा तो दे दी, पर कहा—कि दो महीने में अभी तो तुम्हारे दो ही दिन बीते हैं, इतने ही में तुम्हारे बाल कटवाने का अधिकार मुझे नहीं । मैंने कहा—यह मैं जानता हूँ, परन्तु अपनी आराम के लिए, मैं अपनी इच्छा से उन्हें कटवाना चाहता हूँ । इस पर उसने हस कर बात टाल दी । पीछे से मुझे मालूम हुआ कि गवर्नर को बहुत शक और डर हो गया था कि मेरी इस बात में कोई रहस्य तो नहीं है ? उसके मन्थे मूछ कर कहीं जबरदस्ती बाल मूछ काट डालने का चाहेला तो मैं न मचाऊँ ? परन्तु मैं बार बार कहता ही रहा । मैंने यहाँ तक कह दिया कि मैं लिये देता हूँ कि मैं अपनी इच्छा से बाल कटवाता हूँ । तब कहीं गवर्नर का शक दूर हुआ और उसने दारोगा को जवानी हुक्म दिया कि इन्हें कैंची दे दो । मेरे साथी कैदी मिस्टर पी० के० नायडू बाल बनाना जानते थे । मैं खुद भी थोड़ा बहुत जानता हूँ । मुझे बाल और मूछ काटते देख तथा उस

का कारण समझ कर श्रौं ने भी घसा ही किया। कितनों ही ने सिर्फ वाल ही कटाये। मिस्टर नायडू तथा म दोनों, कोई दो घण्टे हमेशा हिन्दुरतानी कैदियों के वाल काटने में रच किया करते। मेरे राय में इस से आराम आर सुभीता दोनों ह। इससे कैदी देगने में भी भले मालूम होते थे। जेल में अस्तुरा गयो की सग्त मनाही ह। सिर्फ कच्ची ही रख सकते ह।

देग्व-भाल ।

कदियों की देख-भाल करने के लिए जुदे'जुद कर्मचारी आते हे। उन के आते समय प्रत्येक कदी को एक कतार में हो जाना चाहिए। कर्मचारी के आते ही टोपी उतार कर सलाम करना चाहिए। सब कैदियों के पान अगरेजी टोपिया र्थी। अतएव उन के उतारने में कोई दिक्कत न पडती थी। और टोपी उतारना बाजायदा ही नहीं बल्कि उचित भी था। जब कोई कर्मचारी आता, एक कतार में होने का हुक्म "फाल इन" इन शब्दों में दिया जाता। "फाल इन" शब्द हमारे कानों को बहुत परिचित हो गये थे। इन शब्दों का अर्थ यह हे कि एक कता में होकर ध्यानपूर्वक खडे हो जाओ। दिन में चार पॉन बार इस तरह होता। एक कर्मचारी, जो नायब दारोगा कहलाता था, जरा अफुडराज था। इस लिए उस का नाम हिन्दुस्तानी कैदियों ने "जनरल स्मट्स" रख दिया था। मबेरे यह बहुत तडके कितनी ही बार सब से पहिले आ जाता और फिर शाम को भी चडर लगा जाता। साढे नाँ वजे टाकुर आता। यह बहुत भता और दयालु जान पडता था। हमेशा बडे प्रेमपूर्वक समाचार पूछता। जेल के नियमों के अनुसार प्रत्येक कैदी को पहिले

दिन खुले-आम नगा होकर अपना शरीर डाकूर को दिखलाना पड़ता है। परन्तु डाकूर ने हम पर यह नियम नहीं चलाया और जब 'हिन्दुस्तानी कैदी' बहुत हो गये तब उन्होंने कहा कि अगर किसी को युजली इत्यादिकी वीमार्गी हो जाय तो हम से कहना ताकि हम अकेले में ले जाकर उस की देखभाल कर लेंगे। साढे दस या ग्यारह उजे गवर्नर तथा मुख्य दारोगा आते। गवर्नर बड़ा मजबूत, बड़ा न्यायशील, और बड़ा शान्त स्वभाव था। उस का हमेशा एक ही सवाल होता—तुम सब अच्छी तरह तो हो ? तुम्हें कोई चीज दरकार है ? तुम्हें कोई शिफायत तो नहीं है ? और जो कोई किसी चीज को चाहता था शिफायत करता तो वह बड़े ध्यान से सुनता। यथासम्भव वह उन की इच्छा भी पूरी करता। जो शिफायत उसे ठीक जचती उस का भी काफी इन्तजाम करता। कभी कभी डिप्टी गवर्नर भी आता। वह भी भला आदमी था। परन्तु सब से भला, सुशील और मिलनसार तो हमारा पास मुख्य दारोगा ही था। वह स्वयं बड़ा गार्मिन् था। वह हम से बड़ा अच्छा और सभ्य व्यवहार करता। अतएव हर एक कैदी मुक्तकण्ठ से उसका गुण-गान करना था। कैदियों को उनके अधिकारों से लाभ उठाने देने का यह बड़ा ध्यान रखता। कैदियों के छोटे छोटे कसूरों को वह माफ कर देता। हम से तो वह यह समझ कर बहुत नन्हें रखता था कि हम सब निरपराध हैं। अपनी सहानुभूति प्रगट करने के लिए वह कितनी ही बार हमारे पास आकर बातचीत किया करता।

हिन्दुस्तानी कैदियों की वृद्धि ।

में यह सुंका है कि पहले हम ही पाच आदमी सत्याग्रही

कैदी थे। १४ जनवरी, मंगलवार, को मिस्टर वगरी नायडू जो चीफ पिक्केट थे, तथा चायनीज एसोसियेशन के अध्यक्ष मिस्टर करीन जेल में आये। उन्हें देख कर सब खुश हुए। १८ जनवरी को और १४ आदमी आये, उनमें समुदर गा भी थे। उन्हें दो महीने कैद की सजा मिली थी। गेप १३ में मदरासी, कानमीया और गुजराती हिन्दू थे। वे सब रिगा लाइसेन्स फेरी का पेशा करने के अपराध में गिरफ्तार हुए थे। उन पर दो पांड जुर्माना हुआ था। नियम था कि जो दो पांड न दाखिल करे वह १४ दिन जेल भोगे। उन्होंने साहस करके जुर्माना न दिया और कैदपाने में आ गये। २१ जनवरी मंगलवार को ७६ आदमी और भी आये। उन्हीं में नवाव खा भी थे, जिनकी सजा दो महीने की थी। बाकी दो पांड जुर्माना या १४ दिन कैद की सजा वाले थे। इस दल में कितने ही गुजराती हिन्दू थे। कानमीया और मदरासी भी थे। २२ जनवरी, बुधवार को ३५ आदमी फिर आ दाखिल हुए। २३ को ३, २४ को १, २५ का २, २८ को ६ और उम्मी दिन शाम को ४ आदमी और भी आये। २६ को फिर ४ कानमीये आये। अर्थात् २६ जन० तक सब मिला कर १५५ सत्याग्रही कैदी बहा हो गये थे। ३० जनवरी गुरुवार को मुझे प्रिटोरिया (द्रासवाल) ले गये थे। पर मुझे याद है कि उस दिन भी ५६ कैदी आये थे।

भोजन।

भाजन का सवाल ऐसा है कि इस पर कितने ही आदमियों को कितनी ही बार विचार करना चाहिए। परन्तु कैदियों के लिए तो उस पर और भी अधिक ध्यान देने की जरूरत है। उनका तो जियादा दारोमदार अच्छे भोजन पर

ही है। भोजन के सम्बन्ध में यह नियम है कि जेल की तरफ से जो कुछ मिले वही खाय, बाहर का नहीं। सोलजरोँ को जो भोजन मिलता है वही खाना पडता है। पर केदियों और सोलजरोँ में बहुत अन्तर है। सोलजरोँ के लिए उन के भाई भतीजे और चीजें भेज सकते हैं और वे उन्हें ग्रहण कर सकते हैं, पर कैदी तो और चीजें ले ही नहीं सकता, उसे तो मना ही है। भोजन की तरफलीफ केदियाने की बड़ी भारी निशानी है। वातचीत में अन्तर देखा जाता है कि जेल के अधिकारी कहते हैं कि केद में स्वाद का क्या काम ? लजीज चीजें जेल में नहीं दी जाती। जब जेल के डाक्टर के साथ वातचीत करने का मोका मुझे मिला, मैंने उन से कहा कि रोटी के साथ चा अथवा घी या और कोई चीज मिलनी चाहिए। तब उस ने कहा—“यह तो तुम स्वाद के लिए चाहते हो, जेल में वह न मिलेगा।”

अब आप जेल के भोजन का वर्णन सुनिए। जेल के नियम के अनुसार हिन्दुस्तानी कैदी को पहिले हफ्ते में नीचे लिखी चीजें दी जाती हैं।

सपेरे मकई के बारह आंस आटे की लपसी (पू पू)
बिना घी शकर के।

दोपहर को चार आंस चावल और एक आंस घी।

शाम को चार दिन १० आंस मकई के आटे की लपसी (पू पू), तीन दिन बारह आंस भुने हुए बाल, (चिनिस) और नमक।

काफिर को जो भोजन दिया जाता है उसी के आधारों पर यह तजवीज की गई है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि शाम

को फाफिरों को गर्द मिली हुई मकई और चरगी दी जाती है किन्तु हिन्दुस्तानियों को इसके बदले चावल मिलता है ।

दूसरे सप्ताह में और उसके बाद हमेशा मकई के आटे के साथ दो दिन भूने आलू और दो दिन कोई दूसरा शाक, जैसे काहडा इत्यादि, दिया जाता है । जो मास भोजी है उन्हें दूसरे हफ्ते से हर शनिवार को तरकारी के साथ मास भी मिलता है ।

जो कैदी पहिले श्रायें थे उन्होंने ने निश्चय कर लिया था कि हम सरकार से किन्नी प्रकार की रियायत करने की प्रार्थना नहीं करेंगे । जैसा खाना मिलेगा उसी से काम चलायेंगे । सच पूछिए तो पूराक भोजन हिन्दुस्तानियों के लिए उचित नहीं कहा जा सकता । फाफिरों का तो मकई रोज का खाना है । अतएव वह उन्हें बहुत मुआफिक हा सकता है और उसे खाकर वे केदखाने में भी दृष्टगुष्ट रह सकते हैं परन्तु भारत-वासियों के लिए तो चावल को छोड़कर कोई भी चीज मुआफिक नहीं समझी जाती । खिरला ही हिन्दुस्तानी मकई का आटा खाता हागा । खाली मकई को घाल यानी वीन्स खाने का तो आदत हमें थी ही नहीं और तरकारी बगैर तो जिस ढंग से वे लोग बनाते हैं वह हिन्दुस्तानियों को पसन्द नहीं । वे तरकारी न तो साफ करते हैं न उसमें मसाला इत्यादि ही छोड़ते हैं । बल्कि गोरों के लिए जो तरकारी बनती है प्रायः उस के छिलके की तरकारी फाफिरों के लिए बनाई जाती है । नमक के अतिरिक्त उसमें और कोई मसाले की चीज नहीं डाली जाती । शरर की तो बात ही जाने दीजिए । अतएव भोजन की बात सगको खलने लगी । पर हमने निश्चय किया था कि हम सत्याग्रही जेल के अधिकारियों के हाथ न जोड़ेंगे । अत-

एव इस विषय में भी हमने कोई मिहरपानी न चाही और पूर्वोक्त भोजन पर ही सतोप किया ।

गवर्नर ने हमसे पूछताछ की तो उसके जवाब में हमने कहा कि, "भोजन अच्छा नहीं । पर सरकार से हम कोई रियायत-कोई मिहरपानी—नहीं चाहते । सरकार ही यदि भोजन में कुछ सुधार करे तो ठीक है, नहीं तो इस नियम के अनुसार जो खाना मिलता है हम वही खायेंगे ।"

पर यह निश्चय अधिक दिनों तक नहीं टिका । और दूसरे लोग जत्र आये तब हम सबने सोचा कि इन लोगों को भी भोजन के दुःख में शरीक करना उचित नहीं । उन्हें जेल में आना पडा यही बहुत है । और उनके लिए सरकार से अलग रियायत चाहना उचित है । इस ल्याल से, गवर्नर से, इस विषय की बात चीत छेड दी । गवर्नर से कहा कि—हम जेसा हो वैसा भोजन ग्रहण कर सकते हैं । पर पीछे से आये हुए लोग वैसा नहीं कर सकते । गवर्नर ने विचार करके जवाब दिया कि—सिर्फ वर्म के तिहाज से अगर अलग रसोई करना चाही तो कर सकते हो, परन्तु भोजन तो जो मिलता है वही मिलेगा । दूसरी तरह का खाना देना मेरे कानून का नहीं ।

इतने में ऊपर कहे अनुसार १४ हिन्दुस्तानी कैदी और आ गये । उनमें से कितनों ही ने तो 'पू पू' खाने से इनकार कर दिया और भूखे ही दिन काटने लगे । तत्र मने जेल के नियम पढ़े । मुझे बात हुआ कि इस विषय की प्रार्थना Director of Prisons से की जाती है । तत्र गवर्नर से मजूरी लेकर नीचे लिखे मुताबिक दख्खास्त भेजी गई —

"हम नीचे दस्तगत करने वाले कैदी अर्ज करते हैं कि हम सब २१ एशियाटिक कैदी ह । उनमें १८ हिन्दुस्तानी

और चाकी चीनी है। वे हिन्दुस्तानियों को भोजन में मरेंगे 'पू पू (लपमी) मिलता है और चाकी लोगों का चावल और घी, तथा तीन या चार चाक और चार या 'पू पू'। अनियम के दिन आलू और रबिआर को मर्जी दी जाती है। मर्म के लिहाज से हम कोई मान नहीं या सकते। कितनों ही को तो मास माना धर्म-विरुद्ध है। और कितने ही हलाल मान न होने के कारण नहीं या सकते। चीनियों को चावल के बदले मर्ई दी जाती है। सब अर्जदारों में अधिकांश को यूरोपियन ढंग के भोजन की आदत है। और वे रोटी तथा आटे की अन्य चीजें खाते हैं। हममें से कितनों ही को 'पू पू' खाने की प्रतिकूल टेंप नहीं। इससे उनको अजीर्ण हो जाता है। हम में से सात आदमियों ने तो सबरे का भोजन प्रतिकूल किया ही नहीं। सिर्फ, किसी समय कुछ चीनी कैदियों ने दया करके अपनी रोटी में से एक दो टुकड़े दे दिये थे वही उन्होंने खाये थे। यह हाल हमने गवर्ग से कहा। उन्होंने कहा कि चीनियों के पास से जो रोटिया लीं यह अपराध समझा जाता है। हमारी राय में पूर्ण भोजन हमारे लिए मुजिब है। लिहाजा हम अज करते हैं कि 'पू पू' बन्द करके हमें यूरोपियन नियम के अनुसार भोजन मिलना चाहिए। अथवा ऐसा भोजन दिया जाय जो हमें हानि न हो। हमें जो माना दिया जाय वह हमारी प्रकृति और रीति-रिवाज के अनुसार होना चाहिए।

“काम बहुत जल्दी का है, अशद जरूरी है। अतएव अर्जदार अर्ज करते हैं कि इसका उत्तर हमें तार के जरिए दिया जाय।”

इस अर्जी पर हम २१ आदमियों ने दस्तगत किये थे।

दस्तखत हो चुकने के बाद अर्जी भेजी ही जा रही थी कि ७६ भारतीय कैदी और आ पहुँचे। उन्हें भी "पू पू" से नफ़ा न था। अतएव दरखास्त के नीचे इतना मजमून और बढ़ाया गया कि, "७६ आदमी और आये है। पूर्वोक्त भोजन पर उन्हें भी एतराज है। अतएव गीदही प्रबन्ध होना चाहिए।" मने गवर्नर से निवेदन किया कि इस दरखारत को तार से भेज दीजिए। तब उसने टेलीफोन के द्वारा टिरेक्टर से आक्षा लेकर 'पू पू' के बदले चार आस रोटी का हुक्म दिया। इस से लोग बड़े खुश हुए। तब २२, तारीख से सवेरे हमें चार आस रोटी और शाम को भी 'पू पू' के दिन रोटी दी जाने लगी। गाम का आठ आस रोटी की आक्षा थी। यह सिल-सिला फिर भी दू नरा हुक्म होने तक, कायम ही रहा। इसके लिए गवर्नर ने एक कमिटी नियुक्त की थी और उसमें आटा, धान, चावल तथा दाल दिये जाने की चर्चा चल रही थी। इतने ही में हम छोड़ दिये गये। अतएव आगे कोई बात न हुई।

२१ पहिले, जब हम आठ ही आदमी थे, हम कोई रसोई न बनाते थे। भात अच्छा नहीं बनता था और तरकारी की गरी के दिन तरकारी तो बड़ी ही बुरी तरह पकाई जाती थी। इससे हमने रसोई पकाने की भी आक्षा प्राप्त की। पहिले दिन मिस्टर कडवा रसोई बनाने गये। उसके बाद मिस्टर थम्बी नायडू तथा मिस्टर जीवन ये दो आदमी गाना पकाने जाते। आधीर के दिनों में तो इन दोनों सजनों की कोई दो सौ आदमियों की रसोई तैयार करनी पडी थी। भोजन एक बार बनाया जाता था। हफ्ते में दो बार सब्जी की गरी आती, तब रोज दोनों बार पकाना पडता था। मिस्टर थम्बी

मायदू बहुत मिहनत करते थे। सबको धरोसने या बाटने का काम मेरे जिम्मे था।

पूर्वोक्त दरग्रास्त में यह नहीं कहा गया था कि खास हमारे ही लिए अलग भोजन का प्रबन्ध किया जाय बरिह हिन्दुस्तानी मात्र के लिए फेरफार करने की सूचना उसमें थी। गवर्नर से भी यही बात-चीत हुई थी। उसने मजूर भी किया। अब भी आशा की जा सकती है कि जेल में हिन्दुस्तानी कैदियों के भोजन में सुधार हो सकता है। इसके सिवा तीनों चीनियों को चावल के बदले हमसे, भिन्न भोजन मिलता था। इससे और भी असन्तोष फैलता था और यह ध्वजित होता था कि चीनी हमसे हलके (नीचे) सम्भके जाते हैं। अतएव उनकी तरफ से मने, गवर्नर तथा मिस्टर प्लेफर्ड से प्रार्थना की। और अंत में आशा मिली कि चीनियों को भी हिन्दुस्तानी नियों की तरह भोजन दिया जाय।

यूरोपियनों को जिस तरह का भोजन मिलता था, अब यह सुनिश्च। उन लोगों को सवेरे नाश्ता के लिए आठ, आठ 'पू पू' और रोटी मिलती है। दोपहर के भोजन में भी हमें गा रोटी और गुरुना अथवा रोटी और मास तथा आलू, अथवा स-जी और शामको रोज रोटी-तथा 'पू पू'। अर्थात् यूरोपियनों को तीन बार रोटी मिलती है इसलिए वे 'पू पू' की विशेष परवा नहीं करते, मिले तो भला न मिले तो भला। इसके सिवा उन्हें जो गुरुना, और गोश्त हमेशा मिलता था सो प्राते में। और कितनी ही बार उन्हें चाय या फोको भी दिया जाता था। इससे यह जाना जाता है कि काफिरों को उनके मुआफिक और यूरोपियनों को उनके मुआफिक भोजन दिया जाता था। हिन्दुस्तानी घेवारे अघर में ही तटकरे

रहते । उन्हें अपने ढंग का भोजन कभी नमीच नहा
हआ । योरोपियनों का भोजन उन्हें दिया जाय तो गारों को
लाज आती थी । और व इस बात का विचार ही क्यों करने
लगे कि हिन्दुस्तानियों को उनका कोनसा खाना दिया जाय ।
अतएव वे काफिरों की सतर में ढकेल दिये गये ।

यह अन्ध्रों आज तक जारी है । कोई आख उठा कर उस
पर निगाह नहीं डालता । इसे मैं अपने सत्याग्रह की कमजोरी
समझता हूँ । क्योंकि एक ओर जत्र कुछ हिन्दुस्तानी केदी
तो चोरी से—छिप-कर—जैसा चाहिए मगा कर खाना खाते
हैं, और इसके लिए उन्हें कुछ हानि भी नहीं उठानी पड़ती,
तत्र दूसरी ओर कुछ भारतीय केदी जो मिलना है वही खाना
खाते हैं और अपने निज के सिर पर आई विपदा की कहानी
कहने में शर्माते हैं । इसमें बाहर वाले अन्ध्रों में ही टटोलते
हैं । यदि हम स्वार्थ से काम ले और अन्याय का घात करते
रहे तो ऐसी तरुलीफ उठानी ही न पड़े । स्वार्थ को छोड़
कर परमार्थ की ओर नजर रखने में तो दुःख की दवा
फौरन ही मिलती है ।

परन्तु जिम्म तरह इस प्रकार के दुःख की दवा करना
आवश्यक है उसी तरह एक दूसरा विचार करना भी परमा-
वश्यक है । केदी होने से कितने ही सड़क सहने पड़ते हैं ।
यदि कष्ट न हो तो फिर कैदखाना ही किस काम का ? जो
अपने मन को दबा कर रख सकते हैं वही कष्ट को सुख
समझ कर जेल में आनन्द से रह सकते हैं । अतएव केदी
इस बात को नहीं भूलता कि जेलखाने में कष्ट मिलता है ।
और उसे औरों के लिए भी यह न भूज जाना चाहिए । इसके
रिना हमें अपनी रसमोदिगाज़ इस तरह के डाल लेना चाहिए ।

कि उसमें अधिक रद्दोयदल करने की जल्द न पड़े। "जैसा देश वैसा पेश" यह कहावत प्रसिद्ध ही है। दक्षिणी अफ्रीका में रह कर हमें ऐसी ही आदत डालनी चाहिए जिसमें हमें यहाँ का अन्न-जल मुश्किल आ जाय। 'पू पू' गेहूँ के सदृश अन्न, मादा और सौधा भोजन है। यह भी नहीं कह सकते कि उसमें स्वाद नहीं। कभी 'पू पू' गेहूँ से भी उब-चढ़ जाता है। मेरी राय में ता जिस देश में हम रहते हैं उस देश की प्रतिष्ठा की दृष्टि से—आदत के लिहाज से—यहाँ की जमीन में जो अन्न पदा होता हो वह यदि खराब न हो तो अपने काम में लाना उचित है। कितने ही गोरों को 'पू पू' पसंद है और वे हमेशा सबेरे उन्नी को खाते हैं। 'पू पू' के साथ दूध, शकर अथवा घी खाने से वह स्वादिष्ट बन जाता है। इन कारणों से, तथा हमें अभी फिर जेल जाना पड़ेगा, इस खयाल से हमका चाहिए कि हम 'पू पू' खाने की आदत डालें। प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिये यह अभ्यास अनिवार्य होना चाहिए। यदि हमने ऐसा किया तो फिर जब कभी हमें 'पू पू' से काम पड़ेगा, तब वह हमें खलेगा नहीं। अपने देश के लिए हमें अपनी कितनी ही आदतें छोड़नी पड़ेंगी। इसके बिना गुजर नहीं। जो जो जातियाँ आगे बढ़ी हैं उन्होंने, जो बातें हानिकार नहीं हैं अर्थात् विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उनको स्वीकार कर लिया है। मुक्ति-फौज वालों को देखिए, जिस देश में वे जाते हैं उस देश के रीति-रिवाज, पोशाक-पहनाव इत्यादि को, वे अगर पुरे न हों, अपना घर वहाँ के लोगों का मन हरण कर लेते हैं।

रोगी ।

हम डेढ़ सौ कैदियों में एक भी बीमार न होता तो

बड़े ताज्जुब की बात थी। मिस्टर ममुन्दर का पहिले रोगी थे। वे तो जब जेल में आये तभी रीमार थे, सो अस्पताल पहु चाये गये। मिस्टर कटवा को सन्धिवात की बीमारी थी। कितने ही दिन तो जेल में ही मरहम इत्यादि दवायें डाकूर से लीं। परन्तु पीछे से वे भी अस्पताल गये। दूसरे दो कैदी चक्र (Jadva ९९) आने की बीमारी से तल्ल थे। वे भी अस्पताल पहु चाये गये। वहाँ हवा बड़ी गरम थी। कैदियों को धूप में रहना पडता था। इससे किन्नी किसी को चक्र आ जाया करता। उनकी सेवा-शुश्रूषा यथेष्ट की जाती थी। अन्तिम दिनों में मिस्टर नराय का भी रीमार हो गये। डाकूर ने उन्हें दूध इत्यादि देने की आशा दी। तब उनकी तबीयत जरा संभली। तथापि समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि हम मन्थाग्रही कैदियों का म्वास्थ्य अच्छा रहा।

स्थान की कमी।

मे पहिले ही कह चुका हू कि जिस कोठरी में हम लोग रक्खे गये थे उसमें सिर्फ ५१ आदमियों के लिए जगह थी। परामदे भी उतने ही आदमियों के लिए थे। परन्तु जब ५१ के बजाय १५१ मे भी ज्यादा कैदी हो गये तब तो हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पडा। गवर्नर ने बाहर डेरे लगवा दिये बहुत से कैदी उनमें रहने लगे। आखीरी दिनों में १०० कैदी बाहर सोने जाते थे। पर वे सबेरे फिर आ जाते, इससे परामदा भर जाता। उनमें जगह बिल्कुल न रहती। उतनी जगह में कैदी बड़ी तकलीफ से रहते थे। इसके सिवा अपनी ० टेब के अनुसार लोग इधर उधर थूका भी करते। इससे गन्दगी फैलती और बीमारी पैदा होने का डर रहता। सौभाग्य से मेरे समझाने-बुझाने पर लोग मान भी जाते थे।

वे यरामदा साफ करने में भी मदद देते थे। यरामदे तथा पाखाने की सफाई पर बहुत ध्यान दिया जाता था, यही कारण है कि लोग बीमार न हुए। इतने कैदियों को इतनी तद्द जगह में रक्खा, यह सरकार का दोष था। इन्में सब स्वीकार करेंगे। जब कि जगह तद्द थी तब सरकार का कर्तव्य था कि इतने कैदी वहा न भेजती। जो यह आन्दाला अधिक दिना तक और अधिक जॉर शोर स चलाता तो सरकार कभी जियादा कैदियों का समावेश न कर सकती।

पठन-पाठन।

म पहिले ही कह आया हू कि गवर्नर ने हमें जेल में भेज देने की आज्ञा दे दी थी। साथ ही दायात-कलम भी मिली थी। और जेल से सम्बन्ध रखने वाली एक लाइब्रेरी भी थी। कैदियों को उसमें से पुस्तकें मिलती थीं। वहा से मैंने 'कारलाइल' की पुस्तक तथा वाइविल ली थी। एक चीनी दुभाषिया (इ टरपीटर) था। उसने पहिले ही मैं अगरेजी कुरान शरीफ, 'हक्सले' के भाषण, बार्नस, गान्सन और स्काट के जीवन-वृत्तान्त (कारलाइल दृत) तथा बैरुन के नीति-विषयक निबन्ध नामक पुस्तकें ले रक्खी थीं। मेरे निज की किताबों में से इतनी किताबें मेरे पास थीं—मणीलाल नथुभाई की टीका वाली गीता, तामिल पुस्तकें, मोलवी साहिब की दी हुई उर्दू किताबें, टाल्स्टाय के लेख और रस्किन तथा सुकरात के लेख। इन में से बहुत सी पुस्तकें मेने जेल में प्रथम बार अथवा पुनरार पढीं। तामिल का अध्ययन नियम-पृथक करता था। सबेरे गीता, और दोपहर को अधिकतर कुरान शरीफ पढ़ा करता। शाम को मिस्टर फोरदुन को जाइविल पढाता। मिस्टर फोरदुन चीनी किरस्तान ह। वे अगरेजी पढना

चाहते थे। अतएव उन्हें यादविल के छाग में अहरेजी पढ़ाता
 था। यदि पूरे दो महीने जेल में रहना पडा होता तो कारला-
 इत की एक पुस्तक तथा रसकिन की पुस्तकों का भाषान्तर
 करने की इच्छा थी। हा, मुझे स्वीकार है कि मैं पूर्वोक्त पुस्तकों
 में व्यस्त रह सकता था। और इस कारण यदि मुझे दो मास
 और कद की सजा मिलती तो मैं हिम्मत न हारता, यही
 नहीं बल्कि उस अवधि में मैं अपने ज्ञान की, बहुत कुछ
 वृद्धि कर सकता और पूर्णतः सुख-चैन-स रहता। इसके
 सिवा मैं यह भी मानता हूँ कि जिन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़ने
 का शौक है वे हर कहीं एकान्त पा सकते हैं। मेरे सिवा कैदी
 भाइयों में पठन-प्रिय थे-मिस्टर सी० एम० पिछे, मिस्टर
 नायडू तथा चीनी सज्जन। दोनों नायडूओं ने गुजराती पढ़ना
 आरम्भ किया था। पीछे से कितनी ही गुजराती गानों की
 पुस्तकें आई थीं। उन्हें बहुत लोग पढा करते थे। पर इस
 में पढ़ना नहीं कहता।

कवायद

जेल में सारे दिन पढ़ा नहीं जा सकता। और अगर
 यह सम्भव होता भी तो इस में नुकसान ही होता। अतएव
 बड़ी मुश्किल से हमें कवायद और कसरत करने की इजा-
 जत गवर्नर और दारोगा से ली। दारोगा बड़ा भला आदमी
 था। वह खुशी खुशी हमें शाम को कवायद सिखाता। इससे
 बड़ा लाभ होता। जियादा दिन अगर कवायद का सिल-
 सिला जागी रहता तो हम सब को बहुत फायदा होता।
 परन्तु जब बहुत हिन्दुस्तानी आ गये तो दारोगा का काम
 बढ़ गया और परामर्श में जगह कम हो गई। इन कारणों से
 कवायद बन्द ही गई। तथापि मिस्टर नवाब को साथ थे।

इस न घरेलू ढंग से उनके जेरिये रुचायद् होती रहतीं। इनके सिवा गवर्नर की परवानगी से हमने सीने की मेशीन चलाने का काम भी आरम्भ किया था। हम केदियों का झोला बनाना सीखते थे। मिस्टर टी० नायडू तथा मिस्टर ईस्टन इस काम में तेज थे। अतएव वे जल्दी सीख गये। पर मुझे वैसे सफलता न मिली। मैं पूरा सीखने न पाया था कि एकबारगी केदी उड़ गये और काम अधूरा छूट गया। इस से पाठक समझ सकते हैं कि मनुष्य की इच्छा हो तो यह 'जङ्गल में मङ्गल' कर सकता है। इस तरह एक के उड़ इसका काम तजवीज करते रहने से किसी कैदी को जेल का समय भारू नहीं मालूम होता। यदि वह अपने ज्ञान और शक्ति की वृद्धि कर के वहां से बाहर होना है। कितने ही दृष्टांत मिले हैं कि कैदखाने में ऐकनीयत आदमियों ने बड़े भारी भारी काम कर डाले हैं। 'ज्ञान वनीय' ने कैदखाने में बड़े कष्ट सह कर ससार में अमर ग्रन्थ—पिलग्रिम्स प्रोग्रेस—की सृष्टि की है। अगरेज बाइबिल के उद्देश्य ही प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। मिस्टर तिलक ने उमरई के नौ महीने की जेल में 'ओरायन' नाम की पुस्तक लिखी। अतएव जेल में, या दूसरी जगह, सुख मिलेगा या दुःख, चर्गे रहेंगे या धीमार, इसका निपटारा अधिकांश में हमारे निज के मन पर अवलम्बित है।

भेंट !

जेल में हमसे मिलने कितने ही अगरेज आते। साधारण नियम यह है कि एक महीने के भीतर कोई भी किसी भी कैदी से भेंट नहीं कर सकता। उसके बाद हर महीने एक इविचार को एक आदमी मिल सकता है। विशेष कारण से इस नियम में परिवर्तन हो सकता है। इस परिवर्तन से

मिस्टर फिलिप्स न लाभ उठाया। हमारे जल म पहुचने के तीसरे ही दिन मिस्टर फोरटुन से, जो चीनी किरस्तान है, मिलने के लिए मि० फिलिप्स ने इजाजत चाही और उन्हें आजा मिल भी गई। मिस्टर फोरटुन से मिलते समय वे महाशय मुझसे और कौदिया से भी मिले। उन्होंने हम सब से धैर्य और साहस की बातें करके अपने रिवाज के अनुसार ईश्वर से प्रार्थना की। मिस्टर फिलिप्स इस तरह तीन बार मिले। मि० डेविस भी एक पाद्री है। वे भी हम से मिले। मि० पोलक और मिस्टर कांथन ग्रास नगर पर इजाजत लेकर मिलने-आये थे। उन्हें तो सिर्फ आफिस के काम के लिए आने की इजाजत मिली थी। जो लाग इम तरह मिलने आते हैं उनके साथ जेल-का दारोगा रहता है और उसके सामने सब बात-चीत करनी पडती है। "ट्रान्स्वाल लीडर" के स्वामी, मिस्टर कार्टराइट, विशेष आजा लेकर तीन बार मिले। वे भी तुलह कराने के ही उद्देश्य से आते। अतएव उन्हें गानगी तौर पर—दारोगा की गैरहाजिरी में—हमसे मिलने की आजा थी। पहिली भेंट में कार्टराइट साहब यह ज्ञात कर गये थे कि हिन्दुस्तानी जनता क्या चाहती है? किस बात का वह स्वीकार करेगी? दूसरी मुलाकात के समय वे अन्य अगरेज-सज्जनों को लेकर आये। साथ में एक लिखा हुआ कागज—इकरारनामा—भी लेते आये। उसके मजमून में आवश्यक रहोयदल करने के उपरान्त मि० क्री, मिस्टर नायडू, तथा मैंने; उस पर, दस्तखत बनाये। इस कागज तथा इस राजीनामे के विषय में "इण्डियन ओपिनियन" तथा अन्य म्थानों में बहुत कुछ लिखा गया है। अतएव यहा उस के विस्तार करने की जरूरत नहीं। चीफ मैजिस्ट्रेट मिस्टर प्लेकर्ट भी एक बार मिलने आये थे। उन्हें तो

दक्षिण

हमेशा भेंट करने का अधिकार है। परन्तु यह नहीं कह सकते कि वे खास हमी से मिलने आये थे या हम नये लोगों को खेलेखाने में देखने एक बार आ गये थे।

धर्म की शिक्षा।

वर्तमान समय के पश्चिमी देशों में ईश्वरों को धर्म की शिक्षा देने का रिवाज देखा गया है। जोहान्सबर्ग की जेल में ईश्वरों के लिए अलग गिरजा घर है। उसमें सिर्फ गोरों की ही जा सकते हैं। मने अपने तथा मिस्टर फोग्टुन के लिए खास तौर पर इजाजत चाही। पर गवर्नर ने कहा कि इस गिरजाघर में अकेले गोरों की रिस्नात ही जा सकते हैं। हर रविवार को गोरों की वहा जाते हैं। वहा भिन्न भिन्न पादरी उन्हें धर्म की शिक्षा देते हैं। काफिरों के लिए भी विशेष आशा लैन्जर कितने ही पादरी आते हैं। काफिरों के लिए कोई खास मन्दिर नहीं। अतएव वे जेल के मदान में बैठ करत हैं। ईश्वरों के लिए उनके पादरी आते हैं। परन्तु हिन्दू और मुसलमानों के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं। हिन्दुस्तानी की वहा होते भी अधिक नहीं। तथापि उन की धर्म-शिक्षा के लिए जेल में कुछ भी प्रबन्ध नहीं, यह उनके लिए हीनता की सूचना है। इस विषय में दोनों जातियों को विचार कर के लोगों को धर्म-शिक्षा की व्यवस्था जब तक एक भी हिन्दुस्तानी की वहा हो, तबतक, करानी चाहिए। ऐसा काम करने के लिए मौलवी तथा हिन्दू-धर्मगुरु स्वच्छ-हृदय होने चाहिए। अन्यथा शिक्षा का उलटा रूप होजाना सम्भव है।

अन्त ।

जो कुछ जानने लायक बातें हैं उनका अधिकांश वर्णन

ऊपर हो चुका। वं दखाने में काफिरों के साथ हिन्दुस्तानियों की गिनती होती है, यह विषय विचारणीय है। गोरे कौदियो को मोने के लिए खटिया मिलती हं। दात माजने को दनौन, नाक मुह साफ करनेको तौलिया। और कं दी को ये सन क्या नही मिलते, इसकी खोज करनी चाहिये। इस विषय में हम क्यों कोशिश करें, ऐसा स्याल न रयिए। वूँद वूँद पानी से घडा भर जाता है। इस कहावत के अनुसार छोटी ही छोटी बातों से अपना मान घटता या बढता है। "जिसके मान नही, उसके धर्म नही"—अरबी भाषा की पुस्तक में लिखी हुई यह बात त्रिकुल ठीक है। जातिया अगरे बढेंगी तो धीरे २ अपना मान उढा कर ही बढ सकती हं। मान से अभिप्राय उच्छ्रलता से नही। किन्तु डर 'अथवा आलस्य' के बश अपना अभीष्ट न खोना चाहिए—इस प्रकार की मन स्थिति और तदनुरूप आचरण को सच्चा मान कहते है। ऐसा मान वही मनुष्य पा सकता है जिसका सच्चा विश्वास—आधार—परमेश्वर पर होगा। मेरा तो यही कहना है और वह चौकस भी है, कि किसी काम का सत्यज्ञान प्राप्त करना अथवा किसी का वास्तव में पूरा करना यह गुण उस मनुष्य का नही हो सकता जिसमें सच्ची श्रद्धा नही—जो प्रकृत श्रद्धावान नही।

मेरे जेल व अनुभव ।

(दूसरी बार)

पस्ताचना ।

जनवरी में मैं एक बार जेल जा चुका हूँ । उस वक्त जो कुछ बड़ा अनुभव हुआ उसकी अपेक्षा इस बार का अनुभव मुझे अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ता है । मैंने उससे कितनी ही शिक्षाये ग्रहण की हैं । और मेरा खयाल है कि मेरा यह अनुभव अन्य भारतवासियों के लिए भी उपयोगी होगा ।

सत्याग्रह की लड़ाई—निष्क्रिय प्रतिरोध—कितने ही प्रकार से किया जा सकता है । परन्तु राज्य—शासन—सम्यन्धों दु खों को दूर करने का उपाय जेल ही देख पड़ता है । मेरा खयाल है कि हम लोगों को बार बार जेल जाना पड़ेगा । यह केवल इसी आन्दोलन के लिए नहीं, बल्कि आगे जो और और विपदायें उत्पन्न हों, उनके निमित्त भी यही अच्छा इलाज है । अतएव जेल के विषय की सभी शातव्य बातों को जान लेना हिन्दुस्तानियों का कर्त्तव्य है ।

गिरफ्तारी ।

जब मिस्टर सोरावजी जेल में चले गये तब मेरी भी इच्छा हुई कि उनके पीछे मैं भी पहुँच जाऊँ तो अच्छा हो, अथवा उनके छूटने के पहिले ही यह आन्दोलन पूर्ण हो जाय ।

उस समय मेरी आशा व्यर्थ हुई। परन्तु जब नेटाल के वीर नेता जेल में भेजे गये तब फिर वही इच्छा प्रबल हो उठी और रात में वह पूरी भी हुई। डरवन से लौटते हुए सातवीं अफ्टर को मं वोकसरस्ट स्टेशन पर पकड़ा गया, क्योंकि मेरे पास कानून आवश्यक सर्टिफिकेट न था और मैंने अगूटे की निशानी देने से इनकार किया था।

मैं डरवन इस उद्देश से गया था कि नेटाल में शिक्षा समाप्त करने वाले तथा ट्रान्सवाल के प्राचीन निवासी हिन्दुस्तानियों को ले आऊँ। आशा यह थी कि नेटाल के नेताओं की अनुपस्थिति के कारण कितने ही हिन्दुस्तानी घहा से आने को तैयार हो जायगे। सरकार का भी यही खयाल था। अतएव वोकसरस्ट के जेलर को हुक्म मिला था कि सा से भी अधिक हिन्दुस्तानियों के लिए प्रयत्न कर रखा। उसके अनुसार प्रिटारिया से डेरे, कम्बल, बरतन इत्यादि भेजे भी गये थे। जय में कितने ही हिन्दुस्तानियों के साथ वोकसरस्ट उतरा तब हमारे साथ पुलिस भी बहुत थी। परन्तु उसकी मारी ढोड-धूप व्यर्थ हुई। जेलर और पुलिस को निराश होना पडा। क्योंकि डरवन से मेरे साथ बहुत ही कम हिन्दुस्तानी आये थे। उस गाँडी में तो सिर्फ ६ आदमी थे और उसी दिन दूसरी गाडी से ८ आदमी और आये। अर्थात् सब मिलाकर १४ हिन्दुस्तानी आये। सबके सत्र गिरफ्तार किये गये और जेलघाने में पहुँचाये गये। दूसरे दिन हम सत्र मैजिस्ट्रेट के सामने लाये गये, परन्तु सात दिनों के लिए मुफ्तमा मुलतवी कर दिया गया। 'बेल' पर बैठ कर जाने से हमने इनकार किया। दो दिन बाद मि० भागजी कगसन जी कोठारी आये। वे धवासीर से तग थे। बीमारी

फर्ग हमेशा धोई जाती है जिससे कि यह पडी सफा रहती है। बोंबों पर कितनी ही बार चूना पोता जाता है। अतएव ये हमेशा नई की तरह मालूम होती है। आँगन फाटो पत्थर से बनाया गया है। वह सदा धोया जाता है। आँगन में ही स्नानगृह है। तीन आदमी एक साथ बैठकर नहा सकें, इतनी जगह उस में है। दो पाखाने हैं। बैठने के लिए दो बेंचें हैं। ऊपर कटीले तारों की जाली लगी हुई है। यह इन्म लिए कि कौड़ी ऊपर चढ़ न सकें। प्रत्येक कोठरी में प्रकाश और हवा अच्छी आ जा सकती है। उ यजे शाम को कौड़ी रोके जाते हैं और छु ही यजे सरेरे दरवाजा खुलता है। दरवाजे पर ताला जड़ दिया जाता है। इन्म कारण यदि किसी को - कोई कुदरती हाजत अर्थात् पाखाना इत्यादि लगे तो वह राहर नहीं जा सकता। अतएव कोठरी में ही, उस क्रिया के निमित्त जन्तुनाशक पानी से भरे हुए पात्र रगे रहते हैं।

भोजन।

जय में बोकसरस्ट की जेल में गया तब हिन्दुस्तानी क दियों को सरेरे 'पू पू' और दोपहर तथा शाम को चावल और तरकारिया मिलती थी। तरकारी में प्रधानता आलुओं की थी। घी तिलकुल नहीं दिया जाता था। जों कच्ची जेल में थे उन्हें पूर्वाक्त वस्तुओं के अतिरिक्त सरेरे 'पू पू' के साथ एक आस चीनी और दोपहर को आधी रतल रोटी मिलती थी। कच्ची जेल वाले कितने ही आदमी अपनी चीनी और रोटी में से कुछ हिस्सा पक्की जेल वालों को भी दे दिया करते थे। कौदियों को दो दिन मास खाने का हक था, परन्तु हिन्दुओं तथा मुसलमानों, किसी के भी काम का बह न होता था। अतएव उसके ऐज हमें और कोई चीज मिलनी चाहिए थी। इसके

लिए हमने अर्जी भी दी। तब हमें मास के दिन एक ओस घी और आधा रतल बाल (वीन्स) मिलने लगा। इसके सिवा जेल के बगीचे में एक तरकारी आपही आप उगती थी और उससे काम में खाने की इजाजत भी मिली थी। कभी २ बगीचे में से प्याज भी लाने की सुविधा कर दी गई थी। अतएव घी और बाल (वीन्स) के मिलने के बाद भोजन की हमें कोई कहने लायक शिकायत न रह गई थी। जोहान्सबर्ग की जेल में भोजन भिन्न प्रकार का दिया जाता है। तरकारी नहीं दी जाती, शाम को दो दिन सब्जियाँ और 'पू पू' मिलता है। तीन दिन बाल (वीन्स) और एक दिन आलू और 'पू पू' मिलता है।

यह भोजन यद्यपि अपनी प्रथा के अनुसार नहीं है तथापि साधारण तौर पर घुरा नहीं कहा जा सकता। कितने ही हिन्दुस्तानियों को 'पू पू' पर खेचि नहीं, और वे जात-वृथ कर नहीं खाते। परन्तु मैं तो इसे उड़ी-भारी भूल समझता हूँ। 'पू पू' मीठा और पोष्टिक (शक्ति-उर्द्धक) पदार्थ है। गेहूँ की बजाय इस देश में वह काम में लाया जा सकता है। अगर इसमें शकर मिल जाय तो फिर बड़ा ही स्वादिष्ट हो जाता है। परन्तु शकर न होने पर भी यदि भूख लगी हो तो खूर मीठा लगता है। इसके खाने की आदत पड जाने के बाद पूर्णक भोजन से आदमी भूखा नहीं रह सकता। यही नहीं, उससे शरीर दृष्ट-पुष्ट भी हो जाता है। उसमें कुछ रद्दोदल हो जाय तो वह विलकुल पूरा भोजन हो जाय। परन्तु ऐद का बात तो यह है कि हम लोग इतने चटोरे हो गये हैं और हमारी आदत ऐसी पड रही है कि हमें अपने अभ्यास के अनुसार यदि खाना न मिले तो हमारी मिजाज बिगड जाय

हैं। यह अनुभव मुझे चौकसरस्ट में हुआ और उससे मैं बड़ दुर्ग रहता। भोजन का भगडा हमेशा दरपेश रहता और भोजन ही जीवन नहीं है अथवा खाने ही के लिए हम नहीं जीते हैं यह शोर हुआ करता। सत्यग्रहियों के लिए ऐस करना उचित नहीं। भोजन में परिवर्तन कराना, यह अपन काम है। परन्तु परिवर्तन न हो तो जा मिले उसी पर सन्तुष्ट रह कर सरकार को दिग्ग देना चाहिए कि हम उस सं हार खाने वाले नहीं हैं। और इसे हम अपना कर्तव्य मानें। कितने ही हिन्दुस्तानी पुराक की ही अनुविधा के कारण जेल से डरते ह। उन्हें चाहिए कि वे विचार करके भोजन-विषयक अपनी लालसा रोके।

पक्का जेल मिली।

- मेरे ऊपर कहे अनुसार हम सका मुकदमा सात दिनों तक मुलतवी रहा। अर्थात् १४ वीं अक्टोबर को मुकदमा चला। उस समय अन्य हिन्दुस्तानियों को एक मास और कितनों ही को आठ हफते की सरत कैद की सजा मिली। एक लडका ११ वर्ष का था। उसको भी १४ दिन की सांदी कैद की सजा दी गई। मुझे डर था कि शायद मुझ पर से मुकदमा उठा लिया जाय। इस कारण मुझे रंज हो रहा था। और लोगों के मुकदमें फैसल हो जाने के बाद मैजिस्ट्रेट ने थोड़ी देर के लिए मुकदमे मुलतवी रखे। इससे मे और भी घब्रडाया। मेरी चिंता और भी बढ़ी। पहले तो चर्चा यह चल रही थी कि मुझ पर रजिस्ट्रर न दिखलाने और अगूठा की निशानी न करने की तुहर्मत (इलजाम) लगाया जायगा। यही नहीं, बल्कि अन्य हिन्दुस्तानियों को टान्सवाला में ले जाने का दोष भी मदा जायगा। मैं अपने मन में उधेडनुन कर

हो रहा था कि इतने में मेजिस्ट्रेट फिर अदालत में आये और मेरा मुद्दमा आरम्भ हुआ। मुझे २५ पाँच जुरमाने की सजा और जुरमाना न दाखिल करने की हालत में २ मास की सख्त कैद की सजा दी गई। इससे मे रडा प्रसन्न हुआ और अपने को भाग्यवान समझने लगा कि मुझे अन्य भाइयों के साथ में रहने का मोभाव्य प्राप्त हुआ।

पोशाक।

सजा होने के बाद हमें जल की पोशाक पहनाई गई। एक छोटा सा मजगूत उट्टहा पाजामा (जाधिया), सड़क की एक फमीज, इसके ऊपर एक और बदन, एक टोपी, एक तौलिया, मोजे और सेण्डल (Sandal—पहाड़ी दग का जूता) इतने कपडे मिले। मैं समझता हू कि ये कपडे काम करने के यत्न बडे सुभीते के ह। सादे और टिकाऊ होते ह। ऐसे कपडों के विषय में हमें कहने लायक कोई शिकानत नहीं। यदि रोजमर्रा ऐसे कपडे पहनने को मिले तो भी हर्ज नहीं। गौरा के कपडे और तरह के होते ह। उन्हें वेठकदार टोपी मिलती ह। उन्हें घुटने तक के मोजे और दो तौलियों के सिवा रुमाल भी दिये जाने ह। हिन्दुस्तानियों को भी रुमाल देने की जरूरत मालूम होती हे।

तान।

जिन के दियों दो सख्त कैद की सजा मिलती है उनसे ६ घण्टे राज काम कराने का हर सरकार को है। कैदी सदा ६ बजे कोठरियों में बन्द किये जाते हे। सबेरे ५॥ उजे उठने का घण्टा बजता ह। ६ बजे कोठरी का दरवाजा खुलता है। कोठरियों में बन्द करने तथा उन में से बाहर निकालते

समय कौदियों की गिनती की जाती है। प्रत्येक कड़ी का हुक्म दिया जाता है कि अपने अपने विद्योने के पास सावधानी से खड़े रहो, ताकि गिनती जल्दी और ठीक हो जाय। हर एक कड़ी को ६ गजने के पहले अपना विद्योना समेट कर और हाथ मुह धोकर तैयार रहना चाहिए। सात बजे उन्हें अपने काम पर हाज़िर हो जाना पड़ता है। काम तरह तरह का होता है। पहले दिन तो हमें आम रस्ते पर एक खुली जमीन के खोदने का काम मिला। वह जमीन राग-लगाइ (Plantation) के लिए तैयार की जाती थी। हम रागभग ३० हिन्दुस्तानी उस काम पर लगाये गये। जो काम करने में असमर्थ थे उन्हें जाने की ज़रूरत न थी। हमें काफ़िगों के साथ लिया ले गये। जमीन गड़ी कड़ी थी। उम्मे कुदाली से खोदना था। काम कड़ा था। रूप तेज पड़ रही थी। छोटी जेल से यह स्थान कोई उँद मील होगा। सारे हिन्दुस्तानी भूपाटे से काम करने लग। परन्तु अभ्यास कम था। इससे सब बहुत थक गये। रा० तालेचत सिंह के पुत्र रविकृष्ण भी उन लोगों में थे। उन्हें काम करते देख मेरा कलेजा सग़ता था। उनकी मिहनत देख कर मैं खुश भी होता। ज्यों ज्यों दिन बढ़ता गया काम का बोझ अधिक मालूम होता गया। वाडर (दारोगा) बड़ा तेज-मिजाज अर्थात् सग़त था। बरामर 'चलाओ, चलाओ' चिल्लाता रहता। इससे हिन्दुस्तानी बड़े परटाते। कितनों ही को मैंने रोते भी देखा। एक आदमी का पैर फ़ला देखकर मेरा कलेजा फट रहा था। तथापि मैं सब से कहता था कि सब कोई पैसा दिल लगा कर काम करो कि दारोगा को टोकने की ज़रूरत ही न पड़े। मैं स्वयं भी थक गया। हाथों में बड़े-२ छाले पड़ गये। उन से पानी बहने लगा। भुका

मूर्खिल से जाता था और बुदाली भी भारी लँगने लगी । मैं ईश्वर से प्रिन्ती किया करता कि मेरी लाज रक्खो । मुझे इतना बल दो कि मैं अपढ़ न होऊँ और बरोबर काम करता रहूँ । मैं तो उसी पर भरोसा रख के सब काम किया करता । दारोगा मुझे टोकने लगा । हमारे थरू जाने पर, वह टोकता । मैंने उस से कहा कि टोकने की जरूरत नहीं । मैं दिल तोड़कर काम करने-वाला हूँ । दम भर करूँगा । इसी-समय मैंने मिस्टर जीनाभाई देसाई को मूर्छित होते हुए देखा । मैं अपनी जगह से तो हट नहीं सकता था, अतएव जरा थमा । दारोगा बहा गया । मैंने सोचा कि मुझे जाना ही-चाहिए । मैं दौड़ा गया । और भी दो हिन्दुस्तानी आये । जीनाभाई पर पानी छिड़का गया । उन्हें होश आया । दारोगा ने औरों को काम पर भेज दिया, मुझे-उनके पास बैठने दिया । जीनाभाई के ऊपर सूय पानी छोड़ने के बाद उन्हें आराम मालूम हुआ । मैंने दारोगा से कहा कि ये पैदल घर नहा जा सकते । तब गाड़ी भंगवाई गई । मुझे उन्हें ले जाने का हुक्म मिला । जीनाभाई के सिर पर पानी गिराते समय मैं सोचने लगा कि, 'मेरे शब्दों पर भरोसा-आधार रखकर-प्रितने ही हिन्दुस्तानी जेल भोग रहे हैं । यदि मेरी सलाह अनुचित हों तो मैं कितना पापी हूँ ? मेरी उदौलते उन्हें इतना दुःख भोगना पडता है ?' यह कह कर मैंने एक लम्बी साँस ली । ईश्वर को साक्षी समझ कर मैंने फिर सोचा और विचार मैं गोता लगाकर मैं फिर हँसता हुआ निकला । मुझे जान पडा कि मैंने जो सलाह दी है वह उचित है । दुःख भोगने में ही सुख है तो फिर दुःख के लिए रज करने की आवश्यकता नहीं । अभी तो मूर्छा ही आई है पर यदि मौत भी आ जाय तो मैं दुखी-सलाह नहीं

दे सकता। जन्म-वन्धन की अपेक्षा इस दुख को भोगकर बेड़ियों से मुक्त होना ही अपना कर्तव्य है-यह सोचकर मैं निश्चित हो रहा और जीनाभाई को हिम्मत और दिलासा देता रहा।

गाड़ी आते ही जीनाभाई उसमें सुलाये गये। गाड़ी रवाना हुई। उडे दारोगा के पास शिकायत गई। जाच होने पर छोटे दारोगा को चेतावनी मिली। दोपहर को जीना भाई काम पर नहीं लाये गये उसी तरह और भी चार हिन्दुस्तानी कमजोर मालूम हुए। योकी मत्र काम पर आ डटे। दोपहर को बारह से एक। रजे तक भोजन का समय है और एक से पांच रजे तक काम करना पड़ता है। दोपहर को हमारी देख-रेख गोरे दारोगा के बजाय काफिर दारोगा को मिली। वह गोरे दारोगा से अच्छा था। वह बहुत टोन्-टान् न करता था। कभी कभी कुछ कह देता था। इस समय अर्थात् दोपहर को काफिरों और हिन्दुस्तानियों को उसी जगह, परन्तु भिन्न भिन्न भागों में रखा गया। हम लोगों को जरा पोची (मुलायम) जमीन खोदने को दी गई।

जिस आदमी ने यह कन्ट्राक्ट अर्थात् ठीका लिया था उससे मेरी बातें हुई। उसने कहा कि हिन्दुस्तानी कौदियो की मजदूरी से मुझे हानि होना सम्भव है। उसने स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तानी एकाएक उतना शारीरिक श्रम नहीं कर सकते जितना कि काफिर कर सकते हैं।

मैंने उससे कहा कि हिन्दुस्तानी किसी दारोगा के डर से काम करने वाले नहीं। वे तो अकेले परमेश्वर का डर रख कर जितना योग्य काम करेंगे। परन्तु पीछे मुझे

यह विचार बिलकुल बदलना पड़ा। क्यो मुझे ऐसा करना पड़ा, इसका वर्णन सुनिए —

दूसरे दिन हम फिर काम के लिए बाहर निकाले गये। परन्तु गौरे दारोगा के साथ नहीं, एक काफिर दारोगा के साथ। यह उस दिन जाला काफिर न था। यह भी भला आदमी था। हमें जरा भी न टोंकता था।

हम भी भले ही आदमी थे। क्योंकि हम भी नेक-नीयती से जितना जनता था काम करते थे जो काम में हमें सांपा गया था वह भी था मामूली ही। म्युनिसिपल्टी की जमीन में आम रास्ते के पास गड्ढे खोदने और पूरने थे। इस में थकावट आ सकता थी। मुझे अनुभव हो गया कि केवल परमात्मा साक्षी होता है। हम कामचोर थे। क्योंकि लोगों के काम में ढील देखी जाती थी। इस तरह काम की चोरी हमारे लिए बड़े पेच की बात है—यह मेरा निजका मत है। हमारे आन्दोलन में जो ढील (सुस्ती) हुई है उसका भी कारण यही है। मत्याग्रह की राह जैसी सहल है वैसी ही अर्द्धित—अप्रस्थित—भी है। हमारी नियत साफ होनी चाहिए। हमारा सरकार से वैर तो है नहीं। हम उसे अपना शत्रु भी नहीं समझते। सरकार का सामना किया जाय तो उसकी भूल सुधारने के लिए और पेच दूर करने के लिए। हम उसके अनिष्ट से प्रसन्न नहीं। उसका सामना करते हुए भी उसका भला चाहें। इस विचार से तो हमें जेल में शक्ति के अनुसार काम करना चाहिए। शायद हम यह कहें कि हमें काम करने की नीति से कोई वास्ता नहीं। अतएव जब दारोगा हो, तभी हमें पूरा काम करना चाहिए। ऐसा न होता चाहिए काम करना यदि उचित और न्याय न हो तो हमें

रोगी की - पर्याय न करनी चाहिए । हमें उसका सामना करना चाहिए और उसके परिणाम स्वरूप, यदि और सजा मिले तो उसे भोगनी चाहिए । पर कोई हिन्दुस्तानी यह नहीं मानता, जो काम नहीं करते वे सिर्फ आलस्य और कामचोर होने के कारण ही नहीं करते । ऐसा आलस्य और ऐसी चोरी हमें शोभा नहीं देती । मृत्याग्रही के नाते हमें जो काम दिया जाय, करना चाहिए । और यदि डागागा का डर न करते हुए काम करें तो हमें कष्ट-उठाना ही न पड़े । अतः काम की चोरी के कारण ही लोगों को जेल में कितने ही कष्ट उठाने पड़े थे ।

द्वितीय बात के बाद अब हम फिर अपने प्रवृत्त विषयो पर आते हैं । इस तरह दिन बदिन काम आमान होता गया जिस दल में म गया, था, उसे उसके बाद जेल का वागीचा साफ रखने का तथा पौधे-लगाने, इत्यादि का काम मिला । मरुई लगाने और आलुओं की न्यारिया साफ करने तथा उन के पौधों पर मिट्टी चढाने का काम उनमें प्रधान था ।

दो दिन के बाद-हम म्युनिसिपल्टी का तालाब खोदने भेजे गये । वहाँ खोदना, मट्टी की ढेरी लगाना तथा उसे ढोना पडता था । वह काम कठिन था । पर दो दिनों तक ही इसका अनुभव मिला । मेरे पहुँचे पर घरम आ गया पर मिट्टी के उपचार (इलाज) से वह अच्छा हो गया ।

यह स्थान ४-५ मील दूर था । हम टूली (ठेले) में बैठ कर जाते थे । तालाब में ही खाने को बनाना पडता था । अतएव आटा, सामान और इधन भी साथ ही ले जाना पडता था । इस से भी ठेकेदारों को सन्तोष न हुआ । हम काफिरों की बराबरी न कर सके । दो दिन तक तालाब में

हल से काम लिया गया। फिर दूसरा काम हमें सापा गया। आज तक वे ही हिन्दुस्तानी तो जाये, जाते थे जो भिन्न भिन्न काम कर सकते थे। अब ऐसा करने के लिए उनके विभाग किये गये। कितने ही सोलजरोँ की, करों के आस-पास उगी हुई रास, छीलने के लिए भेज दिये गये। चाकी लॉग, इचर-स्तान साफ करने में लगा दिये गये। यही क्रम जारी रहा। इसी रीच बगटन के मुकदमे के बाद कोई ५० हिन्दुस्तानी छूट गये। ता हमेशा रागीचे में काम कराया जाता। वहाँ खोदना, फसल काटना, कूड़ा उटोरना इत्यादि काम था। यह काम मागी नहीं समझा जाता। इस से तन्दुरस्ती बढ़ती है। लगा-तार नौ घण्टे यही काम करते रहने से पहले पहल जी ऊँ उठना है परन्तु अभ्यास हो जाने पर फिर ऐसा नहीं होता।

इस काम के उपरान्त हर एक कोठरी मजो पेशान का पात्र रक्षता रहता है उसे उठा कर ले जाने का काम कराया जाता है। मने देखा है कि यह काम करते हुए लोग घिनाते हैं। पर वास्तव में इस में घिनाने की कोई बात नहीं। काम करने में हलकापन या पेय मानना भूल है। फिर जेल के कोदियो के लिए तो नफरत के खयाल की गुञ्जाइश ही नहीं, मने देखा कि कितनी ही बार कोठरी में यह सवाल दरपेश रहता कि पेशान का पात्र कौन उठावेगा। यदि हम सत्याग्रह के आन्दोलन का रहस्य समझते तो ऐसे सवालों की अपेक्षा हम में प्रतिस्पर्धिता विशेष देख पडती। जिस के हिस्से में ऐसा काम आ पड़े उसे अपने को धन्य समझना चाहिए। अर्थात् सरकार हमें ऐसा काम दे दे तो उस में हमारी कोई इज्जत नहीं, बरिह हम में से जो आप ही पहले उसे करने को नैयार हो जाय, वही श्रेष्ठ समझने लायक है। जब हम

कष्ट सहने को तैयार ह तो फिर एक को 'दूसरे से अधिक कष्ट भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए श्रीग जिस पर अधिक काम आ पड़े उसे अपना गौरव समझना चाहिए । ऐसा आदर्श मि० हसन मिरजा ने पेश किया था । मिस्टर हसन मिरजा को फेफड़े का बहुत बुरा रोग है । वे ह भी नाजुक मिजाज आदमी । तथापि जब जब जो काम उन्हें मिला, उन्होंने खुशी से उसे किया । इतना ही नहा बल्कि अपनी बीमारी की परवा भी न की । एक बार एक काफिर दारोगा ने उन्हें बड़े दारोगा का पाखाना साफ करने पर रख दिया । उन्होंने तुरन्त ही उस काम में मजूर कर लिया । यह काम उन्होंने कभी न किया था । इससे उन्हें कष्ट हो गई । उन्होंने उसकी भी परवा न की । जिस समय वे दूसरा पाखाना साफ कर रहे थे म उहा जा पहुँचा, दखते ही म आश्चर्य से सन्न हो गया । मेरे मन में उनके विषय में, प्रेम उमड़ उठा । पूछताछ करने पर पहले पाखाने की घटना की खबर मिली । एक बार उसी काफिर दारोगा को बड़े दारोगा ने हुक्म दिया था कि हिन्दुस्तानियों के जो पाखाने खास तौर पर गने ह उनकी सफाई के लिए दो हिन्दुस्तानियों को लाओ । दारोगा मेरे पास आया और उसने दो आदमी मुझ से मागे । मैं तो स्वयं उस काम को अच्छा समझता था । मुझे तो ऐसे काम से नफरत ही नहीं । अतएव मैं खुद ही चला गया । मेरा खयाल है कि हमें ऐसे काम करने का अभ्यास होना चाहिए । ऐसे कामों को हम बुरी नजर से देखते ह । यही कारण है जो कितनी ही बार हम अपने आगनों तथा पाखानों को खराब हालत में पाते ह । यही नहीं, इसी के बदौलत हम मिरंगी इत्यादि रोगों को पैदा करते ह अथवा

फैलाते हैं। हम लोग यही मान बैठे हैं कि पाखाना खराब ही है और इस कारण हम कितनी ही बार गन्दगी के दोष से दूषित माने जाते हैं। इसी किस्म का काम न करने के कारण एक हिन्दुस्तानी को सालिटरी सेल की अर्थात् काल-कोठरी में बन्द रहने की सजा मिली थी। सजा दी गई तो कोई परवा नहीं, पर उस सजा के भोगने की जरूरत न थी और ऐसा काम करने में हम आनाकानी करें, यह ठीक नहीं। अब जब मैं उस काम के लिए चला, दारोगा औरों को टोकने लगा कि तुम भी चलो। तब तो पूर्वोक्त हुक्म की बात फेल गई और यद्यपि काम बड़ा कम था तथापि तुरन्त ही मिस्टर उमर उसमान तथा मिस्टर रुस्तम जी मदद के लिए दौड़े। इस घटना के उद्देश्य का अभिप्राय यह है कि सरकार जिस काम को करावे उसे करने में उन्होंने भी अपना मान समझा। यदि हम दिये गये काम से नाराज रहें तो हम सच्ची लडाई के काम के नहीं।

जोहन्सवर्ग को तबादला।

यह तो हुई वॉकसरस्ट के जेल की कथा। अब आगे का हाल सुनिये—मुझे दो महीने की सजा मिली थी। वह सब की सब मुझे वॉकसरस्ट में न भोगनी पड़ी। कुछ दिनों के लिये मैं अचानक जोहन्सवर्ग भी भेज दिया गया था। वहाँ जो कुछ हुआ वह भी जानने लायक है। २५ अक्टूबर को मुझे वहाँ ले गये, क्योंकि दरजी डाह्या के मुकदमे में मेरा बयान होने वाला था। इसके 'सिवा और भी कारण होंगे, इत्यादि तर्क-वितर्क मेरे मन में होते थे। हम सब आशापूर्ण थे। अतएव हमने कहा कि शायद मिस्टर स्मट्स की भेद की जात

होगी। परन्तु पीछे ज्ञाते हुआ कि, यह कुछ नहीं था। मुझे लें जाने के लिए जोहान्सवर्ग से एक दारोगा घास तौर पर भेजा गया था। दारोगा के तथा मेरे लिए रेलचे का एक डब्या दिया गया था। स्केण्डेनैविया का टिकट था। इसका कारण यह था कि उस में तीसरे दर्जे की गाड़िया थीहीं नहीं। जान पड़ता है कि कैदियों को तीसरे ही दर्जे में ले जाते हैं। रास्ते में भी मैं कैदी की पोशाक में था। मेरा सामान मुझी से उठवाया जाता था। जेल से स्टेशन तक पैदल जाना पडा। जोहान्सवर्ग पहुचने पर वहा से भी जेल तक सामान लाद कर जाना पडा। इस बात पर अखबारों में बड़ी बड़ी आलोचनायें हुई। विलायत की पार्लियामेण्ट में प्रश्न किये गये। बहुतों के दिल दुखे। मत्र लोगों का यही खयाल हो गया कि मेरे सदृश राजनैतिक कैदी को साधारण कैदी की पोशाक में ले जाना और बोझ उठवाना न चाहिये था।

लोगों का दिल दुखता था यह इससे जाना जाता है कि जब मिस्टर आगलिया ने सुना कि मुझे इस तरह जाना पडेगा तब उनकी आँखों में आँसू छलछला आये। मिस्टर नायड तथा मि० पोलक को खबर हो गई थी, वे स्टेशन पर मिले। उन्हें भी मेरी दशा देखकर रुलाई आने लगी। ऐसा रोने का कोई कारण न था। इस देश में राजनैतिक और अन्य कैदियों में सरकार भेद रखे, यह सम्भव नहीं। हमें जितना अधिक कष्ट दिया जाय और हम उसे भोगें, उतनी ही जल्दी छुटकारा मिलेगा। फिर जेली पोशाक पहनना और सामान लादना यह विचारने पर मेरी समझ से तो दुःखस्वरूप नहीं जान पड़ता। परन्तु दुनिया तो ऐसी वस्तु को ऐसी ही मानती है। इस कारण विलायत में खलपत्ती मच गई।

(१७) रास्ते में दारोगा की, ओर से-झारा भी कष्ट न मिला। मगर यह निश्चय था कि दारोगा स्वयं यदि जाहिरा इजाजत न दे तो जेल के सिवा दूसरा भोजन ग्रहण न करूंगा। इससे आज तक मैंने जेल के ही भोजन पर निर्वाह किया था। रास्ते के लिए खाना साथ बधा भी न था। दारोगा ने मुझे अपनी इच्छा के अनुसार भोजन पाने की इजाजत दी। स्टेशन-मास्टर ने मुझे पैसे देने चाहे। उसकी सहानुभूति बड़ी उत्तेजित हो उठी थी। मैंने उसका उपकार माना और पैसे लेने से इनकार किया। मिस्टर काजी स्टेशन पर मौजूद थे। उनके पास से १० शिलिंग लिये। उनसे अपने तथा दारोगा के लिए मैंने खाने को लिया।

शाम होते २ जोहान्सवर्ग पहुँचे। दारोगा मुझे हिन्दुस्तानियों से न मिलानर वाला वाला ले गया। कैदखाने में जहाँ रोगी काफिर कैदी थे उस कोठरी में मेरा बिल्लौना डाला गया। इस कोठरी में रात बड़ी बेचैनी ओर घबराहट से कटी। मुझे खबर नहीं थी कि मुझे दूसरे हिन्दुस्तानियों के पास ले जायगे। मैं यही समझा था कि मुझे यही रक्पेंगे। इससे मैं बहुत व्याकुल हुआ। तथापि मैंने जी जान से निश्चय किया कि मेरा तो फर्तन्य यही है कि जो कुछ कष्ट मुझे मिले सहन करूँ। भगवद्गीता मेरे साथ थी। मैंने उसे पढा। उस समय के अनुकूल श्लोकों को पढ कर के उनका मनन किया और धैर्य धारण किया। मेरी घबराहट का कारण यह था कि मुझे काफिर तथा चीनी कैदी जङ्गली, खूनी और अनीतिमान मालूम हुए। उनकी बोली मैं न समझता था। काफिरों ने मुझ से पृथक्ता शुरू की। उनमें मैंने हँसी ठट्ठा का आभास देखा। मैं समझ न सका। कुछ उत्तर न दिया

उन्होंने मुझे से टूटी फ़टी अंग्रेज़ी में पूछा "यहाँ तू किस लिए लाया गया है?" मने कुछ जवाब दे दिया और चुप हो रहा। चीनी ने फिर सवाल करना आरम्भ किया। वह और भी बुरा मालूम हुआ। मेरे विद्योने के सामने आकर वह मुझे घूरने लगा। मैं चुप रहा। फिर वह काफिरके विद्योने की ओर गया। वहाँ दोनों एक दूसरे से फोश (गन्दा) मजाक करने लगे। वे परस्पर के दोषदर्शन भी कराने लगे। ये दोनों कैदी यूनी या डकैत मालूम होते थे। यह देखकर मेरी नाद (आघाई) हवा होगई। यह सब कल गवर्नर को सुनाऊगा, यह सोचकर मुझे बहुत रात बाद कुछ भपकी आ गई।

सधा देख-कष्ट तो यह था। सामान उठाना तो इस के आगे कोई चीज नहीं। जो अनुभव मुझे हुआ है ऐसा ही और हिन्दुस्तानियों को भी होता होगा। वे भी इसी तरह डरते होंगे, यह याद करके मैं गुश हुआ कि ऐसा कष्ट मैं भी भोग रहा हूँ। मने कहा कि यह अनुभव-करके अब मैं सरकार से और भी जोर शोर से लड़ूंगा और जेल में आकर इस विषय का सुधार कराऊंगा। सत्याग्रह की लड़ाई का यह सब टेढ़ा-सर्प की गति के सदृश-लाभ है। दूसरे दिन उठते ही मुझे जहाँ और हिन्दुस्तानी कैदी थे वहाँ ले गये। अतएव मुझे पूर्वोक्त विषय में गवर्नर से कहने सुनने का प्रसंग न मिला। तथापि मेरे मन में यह खयाल बना हुआ है कि इस यात का आन्दोलन करू कि इस तरह हिन्दुस्तानी कैदी काफिरों के साथ न-रखे जाय। जब मैं गया, तब कोई १५ कैदी वहाँ थे। तीन को छोड़कर सब-सत्याग्रही थे। तीन आदमी और अपराधों के अपराधी थे। वे काफिरों के साथ रखे जाते थे। जब मैं गया, - बड़े दारोगा ने हुकम दिया कि

हम सरके लिये जुदी कोठरी दीजाय । मेने खेदके साथ देखा, कितनेही हिन्दोस्तानी काफिरों के साथ-मजे में सोते हैं, क्योंकि उन्हें वहा चोरी से लुक छिप कर तम्याकू मिल-जाती थी । यह हमारे लिये शरम की बात है । हमें काफिरों अथवा और लोगों से घृणा नहीं, परन्तु हम यह नहीं भूल सकने कि उनके और हमारे साधारण व्यवहार में एकता नहीं । फिरमी जो लोग उनके पास सोना चाहते हैं, वे और ही अभिप्राय से ऐसा करते हैं। अतएव यदि ऐसा भाव हमें उत्तेजित करे तो हमें उसको हृदय में स्थान न देना चाहिये ।

जोहान्सरग की जेल में एक थोर दुग्द अनुभव मुझे हुआ । वहा क दो विभाग औरही ढग के ह । एक विभाग में काफिर तथा हिन्दुस्तानी सख्त फेद की सजा के कैदी रहते हैं, दूसरे विभाग में सादी फेद वाले बन्द किये जाते हैं । सख्त फेद का सजा वाल कैदी को उस में जाने का अधिकार नहीं । हम दूसरे विभाग में सोते थे परन्तु दूसरे विभाग का पाखाना बगर काम में लाने का हमें अधिकार न था । पहले विभाग के पाखाने में तो इतने ज्यादा कैदी हो जाते हैं कि उन में पाखाने बैठने की उन्हें बड़ी दिक्कत रहती है । कितने ही हिन्दुस्तानियों को इससे बड़ा दुख होता है । उनमें एक म भी हैं । गरोंगा ने मुझसे कहा था कि दूसरे विभाग के पाखानों में जाने में हर्ज नहीं । इस से मैं बहा गया । इस पाखाने में भी भीड़ होती है । पाखाने खुले हुये हैं । उनमें बरबाजे नहीं होते, ज्योही मैं बैठे, एक लम्बा चौड़ा हट्टा-कट्टा विकराल काफिर आया और मुझसे उठ जाने को कहा तथा लगा गालिया देने । मेने कहा, अभी उठता हूँ । इतने में उसने मुझ हाथ पकड़ कर उठाया और बाहर

फेंक दिया। सौभाग्य से मैंने चौकट पकड़ ली, जिससे मैं गिरा नहीं। म घबराया नहीं। हँस कर चलता बना परन्तु निरा एक दो हिन्दुस्तानियों ने यह मजिग देगा वे रो उठे। जेल में वे सहायता तो कर नहीं सकते थे, हा, अपने को निरुपाय समझ कर उन्हें रज्ज अशुभ्य हुआ। पीछे मुझे मालूम हुआ कि अन्य हिन्दुस्तानियों को भी इसी तरह के दस भोगने पड़ते हैं। इस विषय पर मैंने गवर्नर से घातनीत की और कहा कि हिन्दुस्तानी कैदियों के लिये जुदे पायाने की जरूरत है। मैंने उनसे यह भी कहा कि काफिर कैदियों के साथ हिन्दुस्तानी कैदी कदापि न रखे जाय। गवर्नर ने तुरन्त हुकम दिया कि बड़ी जेल के छ पायाने हिन्दुस्तानी कैदियों के लिए अलग कर दिये जाय। तब जाकर कहीं दूमरे दिन से पायाने की तकलीफ मिटी। मैं छुद् चार दिनों तक पायाने न गया था इस से तबीयत भी खराब हो गई थी।

जोहान्सबर्ग में रहते हुए मुझे तीन चार बार अदालत में जाना पड़ा था। वहा मिस्टर पोलक तथा मेरे पुत्र को मिलने की इजाजत मिली थी। और लोग भी कभी कभी मिल जाया करते थे। मुझे घर से भोजन मँगाने की भी इजाजत अदालत से मिल गई थी। इस से रोटी, पनीर (Cheese) इत्यादि चीजें मेरे लिये मिस्टर कैलेनबेक लाते थे।

मेरे इस जेल में रहते हुये सत्याहर्षी कैदी बहुत बढ़ गये थे। एक चार तो पचास से भी ज्यादा हो गये थे। बहुतों को तो एक पत्थर पर बैठ कर छोटी हथोड़ी से चारों कंड़की तोड़ने का काम सँपा गया था। कोई दस आदमी फटे कपड़े सीने के काम में लगाये गये थे। मुझे मशीन

से टोपी सीने का काम दिया गया था । मैंने मशीन का काम पहिले पहिले यहीं सीखा । काम मुश्किल न था । इससे सीखने में कुछ भी देर न लगी । अधिकांश हिन्दुस्तानी कढ़डी तोड़ने में लगाये गये थे । इस कारण मैंने भी वही काम चाहा । परन्तु दारोगा ने कहा है कि मुझसे बड़े दारोगा ने कहा है कि तुम्हें बाहर न निकालूं । उसने मुझे पत्थर तोड़ने जाने की इजाजत न दी । एक दिन ऐसा हुआ कि मेरे पास मशीन का अथवा दूसरा सीने का काम न था अतः मैं पुस्तकें पढ़ने लगा । नियम यह है कि प्रत्येक कैदी को जेल का कुछ न कुछ काम करते रहना चाहिये । सो दारोगा ने मुझे बुलाया और पूछा—

“क्या आज तुम बीमार हो ?”

मने जवाब दिया—“जी नहीं ”

प्र०—“तो फिर काम क्यों नहीं करते हो ?”

उ०—मेरे पास जो काम था वह पूरा हो गया । मैं काम का ढोंग करना नहीं चाहता । काम दीजिये तो मैं करने को तैयार हूँ । वे काम बैठने से पढ़ने में क्या हर्ज है ?

प्र०—यह तो सच है, लेकिन जब बड़ा दारोगा या गवर्नर आवे तब तुम स्टोर में रहो तो अच्छा है ।

उ०—मैं ऐसा करने के लिये तैयार नहीं । मैं तो गवर्नर से भी कहने वाला हूँ कि मेरे लिये स्टोर में पूरा काम नहीं । इससे मुझे कढ़डी तोड़ने भेज दीजिये ।

प्र०—यह तो बहुत अच्छा है । पर मैं तो बिना इजाजत कढ़डी तोड़ने नहीं भेज सकता न ?

इस घटना के थोड़ी देर बाद गवर्नर आये । मैंने उन्हें सब हाल कह सुनाया । उन्होंने कढ़डी तोड़ने जाने की इजा-

जत न दी और कहा कि तुम्हें वहा जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि दूसरे ही दिन तुम्हें बोरूसरस्ट जाना होगा।

डाक्टरों जांच— और नगे कदी।

बोरूसरस्ट का कैदखाना छोटा था। इस कारण कितनी ही रियायतें जो यहा मिलती हैं, जोहान्सवर्ग की बड़ी जेल में नहीं मिलती। उदाहरण के लिए बोरूसरस्ट की जेल में मिस्टर-दाऊद मुहम्मद को सर पर बाधने के लिए साफा तथा श्रोतों को तो पाजामें भी पहनने को दिये जाते थे। रुस्तमजी, मि० सोराजो—तथा मि० शापुर-जी को अपने निज की टोपी पहनने को दी जाती थी। पर जोहान्सवर्ग की जेल में यह भी मुश्किल था। जोहान्सवर्ग की जेल में जब कदी पहले पहल दाखिल होता है, डाक्टर-उनका मुलाहजा करते हैं। इस मतलब से कि किसी कदी को अगर कोई हुआ-छूत का रोग हो तो उसकी दवा की जाय और दूसरे कदी से अलग रक्खा जाय। इस लिए कदियों की जांच लगातार की जाती है। कितने ही कदियों को अतशक खुजली इत्यादि बीमारिया होती हैं। अतएव उनकी गुप्त इन्द्रिया जाची जाती हैं। कदी बिलकुल नङ्गा देखे जाते हैं। काफिरों को तो १५-मिनट तक बिलकुल नङ्गा खड़ा रखते हैं, ताकि डाक्टर का समय बच जाय। हिन्दुस्तानी कदियों के जाधिये तभी खोले जाते हैं जब डाक्टर आते हैं और लोगों के कपडे पहले ही से उतरवा लिए जाते हैं। प्रायः सभी हिन्दुस्तानी जाधिया खोलने की अनिच्छा प्रकट करते हैं। तथापि कितने ही तो सत्याग्रह की लड़ाई के लिहाज से आसकानी नहीं करते, परन्तु मन में दुखी अवश्य होते हैं।

इस विषय पर मेने डॉक्टर से कहा, 'उन्होंने कितने ही कौदियों को अलग स्टोर में जाचा, परन्तु सदा के लिए प्रेसा करने से इन्कार किया। एसोसियेशन ने इस बारे में लिखा पदों को है और मामला अभी चल रहा है। इस विषय की शिकायत करना न्याय्य है। जो रिवाज बहुत पुराना है उसे एकाएक न बदलना चाहिए। तथापि यह विषय है विचार करने लायक। पुरुषों में ही अवयव-इन्द्रिया-छिपाने की जरूरत नहीं। फिर यह कहना तो अकारण है कि दूसरा श्राद्धमी हमारे गुप्त अवयव घूर कर देखेगा। भूठी शरम करने का कोई कारण नहीं। हम स्वयं यदि निर्दोष मन के हों तो प्रकृति की दी हुई चीज को खासतौर पर छिपाने की आवश्यकता नहीं। मैं जानता हू कि ये विचार भारतीय मात्र को विचित्र मालूम होंगे। तथापि मेरे कथन पर गहरा विचार करने की जरूरत है। इस किस्म की आपत्तिया करने से हमें लडाई में हानि होगी। पहले हिन्दुस्तानी कौदियों की जांच मिलकुल न होती थी। लेकिन एकशर दो तीन हिन्दुस्तानियों ने कह दिया कि हमें तो कोई बीमारी नहीं है पर अखिल में थे वे रोगग्रस्त। डाक्टर को सन्देह हुआ और उसने जब उन्हें जाचा तब वे भूठे निकले। तब से डाक्टर ने हिन्दुस्तानियों को भी जाचने का ठहराव कर दिया। इस से आप जान सकते हैं कि जब हम पर कोई आफत आ पडेती है तो उसका कारण अधिकांश में हम स्वयं ही होते हैं।

जोहान्सवर्ग से वापसी।

ऊपर कहे अनुसार ४ नवम्बर को मैं फिर दोकसरस्ट दोपस आया। उस वक्त भी मेरे साथ एक शिरोगा था। मेरी

पोशाक फेदी की थी। इस बार मुझे पैदल नहीं, गाड़ी में रेलवे स्टेशन पर लिया ले गये। परन्तु दूसरे दरजे की जगह टिकट था तीसरे दरजे का। रास्ते के लिए मुझे आधा पाँड रोटी तथा वीफ, (गो-मांस) खाने के लिए मिला। गो-मांस लेने से मैंने इन्कार कर दिया। तब दारोगा ने रास्ते में मुझे दूसरी खाने की चीजे लेने की इजाजत दी। मैं स्टेशन पर गया, तो वहा कितने ही हिन्दुस्तानी दरजी मिले। उन्होंने मुझे देखा। घात चीत तो कर सकते थे नहीं, मेरी पोशाक देखकर कितनों ही को रुलाई आ गई। मुझे पोशाक इत्यादि के विषय में कुछ बुग भला कहने का अधिकार नहीं था। अतएव मैं चुपचाप देपता रहा। मैं और दारोगा दोनों एक अलहदा डम्पे (गाड़ी) में बैठे। हमारे पास की गाड़ी में यरु दरजी भी था। अपने भोजन में मे, उसने मुझे कुछ खाने को दिया। हेडलवर्ग में मिस्टर सोभाभाई पटेल मिले। स्टेशन से उन्होंने कुछ खाने को लाकर दिया। जिस देवी से उन्होंने कुछ खाने को लिया उसने सत्याग्रह की लडाई से अपनी सहानुभूति दिखाने के विचार से दामन लेना चाहा, परन्तु जब मिस्टर सोभाभाई ने बहुत ही इस्सर किया तब उसने नाममात्र के लिए छु पेनी ले ली। मि० सोभाभाई ने स्ट्राडरटन को तार दे दिया था इस से वहा भी कितने ही हिन्दुस्तानी स्टेशन पर आये थे और साथ ही खाने को भी लेते आये थे। रास्ते में मैंने और दारोगा ने खूब डट कर भोजन किया।

दोषसरस्ट पहु चते ही स्टेशन पर मिस्टर नगदी तथा मि० काजी मिले। वे हम दोनों के साथ थोड़ी दूर तक चले। उन्हें दूर ही दूर चलने की इजाजत मिली थी। स्टेशन से फिर

मुझे सामान उठाकर चलना पडा था। इस बारे में भी अखबारों में खूब चर्चा चली थी। वोक्सरस्ट में मुझे फिर आया देखकर सब हिन्दुस्तानी प्रसन्न हुए। उस रात [को में मि० दाऊद मुहम्मद की कोठरी में बन्द किया गया था। बहुत रात गये तक हम दोनों एक दूसरे को अपनी अपनी धीती सुनाते रहे।

हिन्दुस्तानी कैदियों का दृश्य।

जब मैं वोक्सरस्ट वापस गया तब हिन्दुस्तानी कैदियों का चेहरा बदल गया था। ३० के बजाय ७५ कैदी होगये थे। इस जेल में इतनी जगह न थी कि इतने कैदी रहसकते। अतएव डेरे लगाये गये थे। रसोई के लिए पास चूल्हा प्रिटोरिया (ट्रान्सवाल) से आया था। कारागृह के पास ही नदी बहती है। कैदी उस में स्नान कर सकते थे। उस समय वे कैदी न मालूम होते थे, घटिक सिपाही जान पडते थे। वह कैदपाना न था, सत्याग्रहियों की छावनी थी। फिर दारोगा चाहे दुख दे चाहे सुख, इस से हमें क्या सरोकार। वास्तव में तो अधिकांश दारोगा, समष्टिरूप से, मले मानुस ही थे। हर एक दारोगा का कुछ न कुछ नाम मि० दाऊद मुहम्मद ने रख दिया था। किसी का नाम "उकली" तो किसी का नाम "मफ़्टो"—इस तरह उन्होंने उन सब के जुदे जुदे नाम रखे थे।

मेली मुलाकाती।

वोक्सरस्ट की जेल में मुलाकात करने के लिए बहुत हिन्दुस्तानी आते थे। मि० काजी तो हमेशा आया करते। कैदियों के मनबहलाय की तजवीज वे खूब करते। जहाँ तक

उन से उन पडता ये मिलने आने, वालों को भी मौका प्राप्त करा दिया करते। मि० पोलक प्राय हर हफ्ते काम से मिलने आया करते थे। नेटाल से मि० मुहम्मद, इब्राहीम तथा मि० खरसानी कांग्रेस की मेन लाईन, के चन्दे के लिए पास तौर पर आये थे। ईद के दिन तो कोई १०० हिन्दुस्तानी नेटाल के सेठियो से मिले थे। उस दिन तारों की भी मानों वर्षा हुई थी।

फुटकर विचार-।

जेल में साधारण तौर पर बहुत स्वच्छता रखी जाती है। यदि ऐसा न हो तो बीमारियों के उठने में देर न लगे। तथापि कितनी ही बातों में गन्दगी भी देखी जाती है। श्रोढ़ने के कम्बल एक दूसरे से हमेशा बदल जाते हैं। चाहे जैसे मैले काफिर का श्रोढ़ा हुआ कम्बल हिन्दुस्तानी के हिरसे में आ जाता है। उन में प्राय लोपें, पड जाती है और बदबू निकला करती है। कानून के अनुसार तो जत्र ० धूप निकले तत्र २ हमेशा आत्रे घन्टे तक उन्हें सुखाना चाहिए। परन्तु ऐसा शायद ही कभी किया गया हो, सफाई-पसन्द आदमी के लिए यह गडबड साधारण बात नहीं। पहनने के कपडों की भी दशा बहुत बर ऐसी ही हो जाती है। क़ैदियों के छूटते वक्त उन के बदन के कपडे हमेशा धोये नहीं जाते। वे वैसे ही मैले नये क़ैदियों को पहना दिये जाते हैं। यह बात बड़ी घिनौनी है।

कैदी जेल में पचासच धादे जाते थे। जोहान्सबर्ग में जहा २०० क़ैदियों की गुज़ाईश थी, वहा ४०० ठसे गये। एक कोठरी में कानून की निविष्ट सख्या से दूने कैदी बहुत बौर घन्द किये जाते थे और कभी ३ उन्हें काफी कम्बल तक

नहीं मिलने थे। यह तकलीफ ऐसी वैसी तकलीफ नहीं। परन्तु प्रकृति का नियम कुछ ऐसा है कि ये-कसूर मनुष्य जिस स्थिति में आ पड़ता है उसमें उसकी रक्षा वह स्व करता है। हिन्दुस्तानी कौदियों का भी यही हाल था। पूर्वाक्त सभी विपद में भी हिन्दुस्तानी प्रसन्न रहते और मिस्टर दाऊद मुहम्मद तो दिन भर खुशविल रहते। यही नहीं। वे हँसी मजाक करके सारे हिन्दुस्तानी कौदियों को हँसाया करते थे।

शेल में दुःख की बात तो यह देख पड़ी कि एक बार कितने ही हिन्दुस्तानी बैठे हुये थे। एक काफिर दारोगा आया उसने थोड़ी सी घास छीलने के लिये दो हिन्दुस्तानी माँगे। थोड़ी देर तक कोई न बोला। तब मि० इमाम अन्दुल कादिर जाने के लिये तैयार हुये। तिस पर भी उनके साथ जाने को कोई न निकला। सब दारोगा से कहने लगे कि ये हमारे इमाम हैं। इन्हें मत ले जाओ। ऐसा कहने से दुनी खराबी हुई। अतः तो हर एक को घास छीलने को तैयार होने की जरूरत थी। सो तो एक शोर रहा। परन्तु जब अपनी जाति का नाम रखने के लिये इमाम साहब तैयार हुये तब उनकी पद-प्रतिष्ठा जाहिर कर दी। वे तो घास छीलने को तैयार हो गये, पर शोर कोई न हुआ-मानों यह दिखा कर उन्होंने अपनी वेशरमी प्रकट की।

धर्म--मरुद ।

मेने आभी ही सजा भोगी होगी, कि फिनिक्स से तार आया कि श्रीमती गार्धी, बीमार है। वे, सृत्यु-शय्या पर पड़ी है, इस रीतिसे मुझे जानना चाहिये। इस खबर से सत्रको रज हुआ। मैं दुविधा में पड़ गया कि इस समय, मेरा कर्तव्य

क्या, हाँ। जेलर ने पूछा कि — “तुम जुर्माना दायिल करके जाना चाहते हो या नहीं ?” मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि — “जुर्माना त' मैं किसी हालत में भी नहीं दे सकता। सगे-सम्बन्धियों से विछोह होना। भी हमारी सत्याग्रह की लड़ाई का एक अंग है।” यह सुन कर जेलर हँसा और रज़ीदा भी हुआ। साधारण तोर पर मेरा यह विचार निष्ठुर जान पड़ता है। तथापि मुझे तो निश्चय है कि यह सत्या है—श्रेयस्कर है। स्वदेश प्रेम को मैं अपने धर्म का एक अंग समझता हूँ। इससे केवल यही नहीं कि स्वदेश-प्रेम में ही धर्म के सर्वांश का समावेश होता है, बल्कि यह कि स्वदेश-प्रेम के बिना-धर्म की पूर्ति नहीं हो सकती। धर्म के-पालन करने में-यदि स्त्री, पुत्र का-वियोग सहना पड़े तो उसे सहन-करना चाहिये। परंवा-नहीं यदि वे सदा के लिए हम से-विछुड जाय। इस में जरा भी निष्ठुरता नहीं। यह तो स्वदेश-प्रेमियों का कर्तव्य ही है। जब कि हमें मृत्यु के-दिन तक लड़ना ही है तो फिर इसके सिवा दूसरा स्याल हमारे-दिल में पैदा-न होना चाहिये। लार्ड राबर्ट्स ने अपना कर्तव्य पालन करते हुए, उन दिनों जब कि उनका काम प्राय पूरा हो चुका था अपने इकलौते लड़के की मृत्यु का समाचार सुना और उसे दफन करने में वे शरीक भी न हो सके, क्योंकि-वे लड़ाई में लगे हुए थे। ऐसे उदाहरणों-से ससार का इतिहास भरा पड़ा है।

— काफ़िरो के भगडे।

— जेल में कितने ही बड़े बड़े खूनी काफ़िर कैदी थे। उन में हमेशा लड़ाई भगडे हुआ करते थे कोठरियों में बन्द किये जाने पर भी वे लड़ाई किया करते थे। कभी २

नो दारोगा का भी सामना कर बैठते थे। कैदियों ने दो बार दारोगा को पीटा भी ऐसे कैदियों के साथ हिन्दुस्तानी कैदियों को रखने से जॉ पतरा हो सकता है वह साफ ही जाहिर है। गर्नामत है कि हिन्दुस्तानियों पर वंसी नोयत अभी तक नहीं आई। परन्तु जब तक सरकारी कानून कहता है कि काफिरों में हिन्दुस्तानी कैदियों की भी गिनती की जाय तब तक इस हालत को खतरनाक ही समझिए॥

जेल में बीमारी।

जेल में अधिकांश कैदी ऐसे थे जिन्हें कोई खास बीमारी न थी। मि० मावजी का हाल पहले ही लिख चुका है। मि० राजू नाम के एक तामिल (मद्रासी) सज्जन थे। एक बार उन्हें सख्त आमातिसार हुआ था, बहुत बेचैनी रही। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि उन्हें रोज ३० प्याले चाय पीने की आदत थी। जेल में चाय कहा, इसी से उन्हें इस रोग ने धर दवाया। उन्होंने चाय मिलने की कोशिश भी की, परन्तु मिली नहीं। उसके बदले दवा मिली, और जेल के डाक्टर ने २ पांड दूध तथा रोटी देनी की इजाज़त दी। इससे वे आराम हो गये। मि० रविकृष्ण तालेवन्त सिंह की तमिषत आखिर तक सगव रही। मि० काजी और मिस्टर वाघजीर अन्त तक रोगी रहे। मि० रतनसी सोढ़ा चातुर्मास ब्रत रहते थे और एकाहारी थे। भोजन अच्छा न मिलने से वे भूखे रहते थे। परन्तु अन्त में वे भी अच्छे हो गये। इनके सिवा कितने ही लोगों को कुछ न कुछ बीमारी भोगनी पड़ी। तथापि मैंने देखा कि बीमारी में भी हिन्दुस्तानी पस्तहिम्मत न हुए। अपने देश के नाम सराबरे, इन कष्टों के लिए सदा तैयार रहे।

कुछ विधन-बाधाएँ। (५८)

यह देखने में आया कि बाहरी मुसीबतों की अपेक्षा भीतरी आपत्तियाँ अधिक दुःख देती थीं। वहाँ हिन्दू मुसलमान तथा उच्च और नीच जाति के भेद-भाव की झलक भी कभी कभी देख पड़ती थी। वहाँ सभी जातियों और सभी श्रेणियों के हिन्दुस्तानी रहते थे। उनके रग-ढंग से यह जाना जा सकता था कि हम स्वराज्य-प्राप्ति की राह में कितने पिछड़े हुए हैं। तथापि वहाँ भी देखा गया कि यह कोई ऐसी बात नहीं जिसके कारण हम स्वराज्य का संचालन न कर सकें, क्योंकि जितनी विधन-बाधाएँ उपस्थित हुई वे अन्त में दूर भी हो गईं।

कितने ही हिन्दू कहते थे कि हम मुसलमानों के हाथ का खाना न खायेंगे, फला आदमी के हाथ का न खायेंगे। ऐसा कहने वाले आदमियों को तो हिन्दुस्तान के बाहर कदम ही नहीं रखना चाहिए। गोरों या काफिर भी हमारे खाने से छू जायें तो हर्ज नहीं। एक बार एक आदमी ने पेंटराज किया कि मैं फला चमार के पास न सोऊंगा। यह भी हमारे लिए शर्म की बात है। पूछ-तोछ करने पर मालूम हुआ कि यह वनस्प्य भेद-भाव का तो कायल न था, परन्तु उस ने यह इसलिए चाहा था कि कहीं देश में उस के संजातियों को यह बात मालूम हो गई तो वे पेंटराज करेंगे। मैं जानता हूँ इस तरह के ऊँच-नीच के खयाल और जाति वालों के जुटन से डर कर हम सत्य को छोड़ कर असत्य का आदर करने लग गये हैं। यदि हम जानते हैं कि चमार का तिरस्कार करना ठीक नहीं तो फिर जाति वालों तथा दूसरों से फजूल डर कर और सत्य को छोड़कर हम सत्याग्रही कैसे बहे जा सकते हैं? मेरी यह इच्छा है कि इस लड़ाई में शरीक होने वाले

हिन्दुस्तानी जाति, परिवार और अधर्म का मुकाबला करके सत्याग्रही बनें। हम ऐसा नहीं करते, इसी से हमारा आन्दोलन शिथिल है। मेरा तो यही निश्चय है। जब कि हम सब हिन्दुस्तानी हैं तो झूठे भेद-भाव रख कर हम वढ वढ कर बातें बनायें और अधिकार मागे, यह कैसे सम्भव है? अथवा "देश में हमारा क्या होगा" इस डर से हम सत्य का अवलम्बन न करें तो इस लड़ाई में हमें कैसे विजय प्राप्त होगी? डरकर किसी काम को छोड़ना तो कायरों का काम है। और कायर हिन्दुस्तानी इस महायुद्ध में सरकार के मुकाबले अन्त तक नहीं जूझ सकते।

जेल में कौन जा सकता है ?

पूवोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि व्यसनग्रस्त, जाति पाति के झूठे भेद रखने वाले, भगडालू, हिन्दू-मुसलमान में ऊँच-नीच मानने वाले और रोगी आदमी न तो जेल में जा ही सकते हैं और न वे वहा अधिक दिन टिक सकते हैं। देश-हित के नाम पर सन्मान मान कर जेल जाने वाले का शरीर, मन तथा आत्मा स्वस्थ-सशक्त होने चाहिये। रोगी आदमी अन्त में थक जाता है और हिन्दू-मुसलमान में उँच-नीच का बखेड़ा करने वाला तब व्यसन में फसने वाला, चाय, बीटी अथवा अन्य वस्तु के नाम पर बिके जाने वाला आदमी तक नहीं ठहर सकता।

पहाई। ५। ११ ११ ११ ११

दिन भर काम करें तो भी 'सवेरे' शाम तथा 'रविवार' के दिन पढ़ने को कुछ समय मिल सकता है। और जेल में अन्य भ्रष्टाचार न होने के कारण पढ़ भी मजे से पाते हैं। बहुत थोड़ा समय मिलने पर भी रस्किन की दो प्रख्यात पुस्तकें,

थारो के नियन्ध, यायविल के कुछ-भाग, गेरीघाट्टी-का जीवनचरित्र (गुजराती में), लार्ड वेफन के नियन्ध (गुजराती में), हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में दो और पुस्तकें मने अग रेजी में पढ़ीं। रस्किन तथा थारो के लेखों में स्थान स्थान पर सत्याग्रह भरा पडा है। मि० दिवान ने हम लोगों के लिए गुजराती पुस्तकें भेजी थीं। इसके सिवा भगवद्गीता प्रायः सदा ही पढी जाती थी। इस पठन-का परिणाम यह हुआ कि मेरा हृदय-सत्याग्रह के विषय में अधिक पक्का हो गया और मैं कह सकता हू कि जेल-में ऐसी-कोई बात नहीं जिससे जी ऊपर उड़े।

दो प्रकार के विचार ।-

ऊपर जो कुछ मैं लिख चुका हू उस से दो प्रकार के खयाल पैदा हो सकते हैं- -

1- एक तो यह, कि जेल में जाकर बन्दी होना, मोटा खुरदरा और खराब कपडा पहनना, खराब खाना खाना, भूखों मरना, दारोगा की ठोकरें खाना, काफिरों-में बैठना, पसन्द वे-पसन्द सब काम करना, हमेशा-ऐसे दारोगा की टहल करना जो खुद हमारी नौकरी करने लायक है, अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से न मिल सकना, किसी को चिट्ठी न लिख सकना, आवश्यक वस्तु-न पाना, सूनी-और डाकुओं के साथ सोना-ये दुःख किस लिए उठावें ? इससे तो मौत ही भली। जुर्माना देकर छूट जाय पर जेल न जाय। भगवान् करे जेल में किसी को न जाना पड़े। ऐसे विचारों से मनुष्य का हृदय विलकुल निर्वल हो जाता है और वह जेल से डरने लगता है, तथा वहां जिस शुभ कार्य के लिए बंध-जाता है उसे नहीं कर पाता।

दूसरा खयाल यह होता है कि देश-हित के नाम पर, मान रक्षा के लिए, धर्म के निमित्त मुझे जेल जाना पड़े तो यह मेरे सौभाग्य का मूचक है। जेल में दुःख किस बात का ? यहाँ तो मुझे घटुओं की तावेदारी करनी पड़ती है। उस के पेंज जेल में अकेले दारोगा की ही सेवा करनी पड़ती है। जेल में न मुझे किसी बात की चिन्ता। न पाने-कमाने की फिक्र। वहाँ तो और लोग रोज बक्त पर पाना पकाते हैं और शरीर की रक्षा स्वयं सरकार करती है। इन सब के लिए मुझे कुछ देना भी नहीं पड़ता। काम ऐसा मिलता है कि खासा व्यायाम हो जाता है। सारे व्यसन सहज ही छूट जाते हैं। मन स्वतन्त्र रहता है। ईश्वर-भजन का लाभ सहज ही मिल जाता है। वहाँ शरीर मात्र बन्दी होता है और आत्मा तो अधिक स्वतन्त्र हो जाता है। मैं नियम से रोज बठता हूँ। शरीर की रक्षा का भार उसी पर है जिसने इसे बन्दी बनाया है। इस प्रकार हर तरह में आजाद हूँ। जब मुझ पर मुसीबत आती या पापी दारोगा मार-पीट कर बैठता है तो मुझे धीरज रखने का अभ्यास होता है। मैं यह समझ कर राश होता हूँ कि उनका सामना तो करना पड़ता है। ऐसे विचार से जेल पवित्र और सुखदायक मानना या धनाना तो अपने ही हाथ में है। मन की दशा विचित्र है। थोड़े ही में वह दुःखी और थोड़े ही में वह सुखी हो जाता है। मुझे आशा है कि मेरी यह दूसरी कहानी पढ़ कर पाठक यही निश्चय करेंगे कि देश के लिए अथवा धर्म के नाम पर जेल जाना, वहाँ तकलीफ उठाना अथवा और तरह के सङ्कट सहन करना अपना कर्तव्य है। इसी में हमें सुख है।

मेरे जेल के अनुभव ।

[तीसरी वार]

बोकसरस्ट ।

२५ फरवरी को, जब मुझे तीन मास की सख्त कैद की सजा मिली और मैं अपने कैदी भाइयों तथा अपने पुत्र से बोकसरस्ट की जेल में मिला तब मुझे आशा नहीं थी कि इस तीसरी वार की जेलयात्रा के निषय में मुझे कुछ कहने सुनने का लिखने की जरूरत होगी । परन्तु मेरी यह धारणा मनुष्य की अन्य अनेक धारणाओं की तरह असत्य सिद्ध हुई । इस बार मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ वह पिछले अनुभवों से निराला है । उससे मुझे जो जो शिक्षायें मिलीं वे चर्चों के परिश्रम और अभ्यास से भी नहीं मिल सकतीं । मैं इन महीनों को अमूल्य समझता हूँ । इस थोड़ी ही अवधि में मैंने सत्याग्रह के कितने ही चित्र दृष्ट-देखे और मैं अपने को २५ फरवरी से पहिले की अपेक्षा अब अधिक बलवान सत्याग्रही समझता हूँ । इसके लिए मुझे दू-सवाल की सरकार का कृतज्ञ होना चाहिये ।

कितने ही अधिकारियों को भी निश्चय सा था कि इस बार मुझे द्वा मास से कम की सजा न मिलेगी । मेरे साथी चूड़ और प्रसिद्ध भारतवासी मेरा पुत्र, ये सब द्वा मासकी कैद भोग रहे थे । अतएव मैं भी यही मनाता था कि भगवान् करें, अधिकारियों की आशा पूरी हो । लेकिन अभियोग

मुक्त पर कानून की दफा की रु से लगाया गया था । इससे मुझे डर था कि ३ हो मास की सजा मिलेगी और ऐसा ही हुआ भी ।

कैद की सजा मिलने पर मे मिस्टर दाऊद मुहम्मद, मि० रस्तम जी, मि० सोराय जी, मि० पिह्ले, मि० हजूर सिंह, मि० लालप्रहादुर सिंह-इत्यादि, सत्याग्रहियों, से बडे हरपूर्वक मिला । कोई १० कैदियों को छोड कर बाकी सब के लिए जेल के मैदान में डेरों में सोने का प्रबन्ध था । इससे वहा का दृश्य जेल की अपेक्षा लड़ाई की छावनी का सा ही अधिक देख पडता था । डेरों में सोना सब को पसन्द आया । वहा खाने का भी आराम था । रसोई बनाना पहले की तरह हमारे ही सिपुर्द था । इससे मनमाने ढंग से खाना पाते थे । हम सब मिला कर ७७ सत्याग्रही कैदी थे । काम जो कुछ और जिस किसी को दिया जाता था वह आसान और कम था । मैजिस्ट्रेट की कचहरी के सामने वाली सडक बनानी थी । उसके लिए पत्थर, कंकडी आदि सोदने और धरापर जमाने पडते थे । इसके बाद मदरसे के मैदान में घास छीलनी पडती थी । परन्तु लोग खूब मजे में और आसानी से काम करते थे ।

यों तीन दिन तक मैं भी स्पेन, टोली के जमादार के साथ काम पर गया था । किन्तु बीच ही में तार आ गया, कि मैं बाहर कार्य के लिए न भेजा जाऊँ । मैं निराश हो गया, क्योंकि मुझे बाहर जाना पसन्द था । उस से मेरा स्वास्थ्य सुधरता था और बदन गठीला होता था । साधारणत मैं हमेशा दो बार भाजन करता हूँ । परन्तु बोकसरस्ट की जेल में काम के श्रम के कारण शरीर दो के बजाय तीन बार खाना

मागता था। झाड़ू देने का काम मिला। इस काम से दिन मुश्किल से कटता था। परन्तु इस काम के भी छूटने का वक्त आ गया।

वोकसरस्ट क्यों छूटा ?

दूसरी मार्च को यजर मिली कि मुझे प्रिटोरिया (टासवाल) भेजने का हुक्म है। उसी दिन मेरी तैयारी की गई। पानी बरस रहा था। राह-गंठ खराब थी। इस दशा में भी मुझे अपनी गंठरी उठाकर जाना पड़ा। दारोगा साथ था। शाम की ट्रेन से तीसरे दर्जे की गाडी में वह मुझे लिवा ले गया।

कितने ही लोगों को, इस घटना से, यह खयाल हुआ कि मामला ठरढा हुआ चाहता है। कुछ लोगों ने समझा कि मुझे अलग ले जाकर अधिक कष्ट देने का विचार है। और बहुतों ने तो यह भी विचार किया कि हो न हो इस हेतु से कि सर्वसाधारण की सभा में चर्चा न हो, इन्हें प्रिटोरिया में रख कर अधिक सहूलियत देने और अधिक रिश्रायत करने के लिए ले गये हैं।

वोकसरस्ट छोडना मुझे अच्छा न लगा, वहा हम दिन में जिस तरह आनन्द से रहते थे, रात में भी बात-चीत-विरस कहानी-कह कर आराम से रहते थे। मि० हजूर-सिंह तथा मि० जोशी ये दो सज्जन तो खासकर बहुत ही सम्भाषण किया करते। उनके सवाल जवाब भी व्यर्थ के न हुआ करते थे, ज्ञान-ध्यान की बातें उनमें भरी रहती थीं। जहा दिन रात इस प्रकार सुख-चैन से गुजरते थे और जहा अधिक से अधिक हिन्दुस्तानी केलियों की छावनी थी वहा से चला जाँना किस सत्याग्रही को अलग लग सकता है? परन्तु, यदि

मनुष्य की इच्छा के अनुसार काम होते हों तो फिर वह आदमी न कहा जाय। मैं तो चल दिया। रास्ते में मि० काजी संदुआ मलाम करके मैं आगे दारोगा गाडी में घुसे। जाड़ा पड़ रहा था। सारी रात पानी बरसा। मुझे ओढ़ना ओढ़ने की इजाजत मिली। इससे कुछ आराम मिला। जाड़ा रुका। खाने के लिए मेरे साथ रोटी और पनीर (Cheese) दिया गया था। मैं तो खाकर चला था इस लिए वह दारोगा मेरे काम आया।

प्रिटोरिया की जेल में—गुरु-आगत ।

तीसरी तारीख को प्रिटोरिया पहुँचा। वहाँ मुझे सब कुछ नया मालूम हुआ। जेल भी नई बन गई थी। आदमी भी नये। मुझसे खाने को कहा गया, परन्तु मेरी तो इच्छा ही न थी। तब "मीलीमिल" का "पोरीज" मेरे आगे रखा दिया गया। मैंने एक चमचा भर चरकर उसे हटा दिया। यह देखकर दारोगा को अचरज हुआ। मैंने कहा—मुझे भूख नहीं। वह हँसा। इसके बाद मैं दूसरे दारोगा की हिरासत में रखा गया। उसने कहा, "गाधी, टोपी उतार"। मैंने टोपी उतार ली। फिर उसने पूछा—“तू गाधी का लडका है ?” मैंने कहा—“नहीं, मेरा लडका तो वोक्सरस्ट में छु महीने की रुँद भोग रहा है। तब मैं एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। वहाँ मैं घूमने-टहलने लगा। थोड़ी देर में दारोगा ने दरवाजे के पास वाले खुराक से भाकर कर मुझे चलता-फिरता हुआ देखा। उसने कहा—“गाधी तू घूम मत। एक जगह बँठा रह। फर्श खगम होती है।” मैंने टहलना बन्द कर दिया। एक कोने में खड़ा हो गया। पास पढ़ने के लिए भी कुछ न था। मेरी किताबें

मुझे मिली नहीं थी। कोई = बजे मुझे यन्द किया था। दस बजे डाक्टर के पास लिया ले गये। डाक्टर ने मुझ से यह पूछ कर कि तुम्हें कोई छूत की तो बीमारी नहीं है, खाना कर दिया। मैं फिर यन्द कर दिया गया। ११ बजे मुझे एक दूसरी छोटी कोठरी में ले गये। वहा में बहुत देर तक रहा। ऐसी कोठरिया एक एक आदमी के लिए बनाई गई हैं। उनकी लम्बाई चौड़ाई कोई १० x ७ फीट होगी। फर्श काला है, अल्कतरा पुता हुआ है। उसकी चमक-दमक बनाये रखने के लिए दारोगा कोशिश किया करते हैं। हवा और प्रकाश के लिए फाच की और लोहे के स्प्रिंगे वाली बहुत ही छोटी २ पिडकिया हैं। कैंदियो को रात में देखने भालने के लिए बिजली की बत्तिया रहती ह। बत्तियां कैंदी के सुभीते की नहीं, क्योंकि उनसे इतनी 'रोशनी' नहीं होती कि पढ़ा जा सके। बत्ती के पास जाकर जत्र में खड़ा रहता तब बड़े अक्षरों की पुस्तक पढ़ सकता था। बत्ती ठीक आठ बजे घुमा दी जाती है। पर रात में कोई पाच छ बार जलाई जाती है और उसके उजियाले में दारोगा उस सूराय से भाक कर कैंदियों को देख जाया करता है।

११ बज जाने के बाद डिपुटी गवर्नर आये। उनसे मैंने तीन बातें कही। एक तो किताबों की माग, दूसरी मेरी स्त्री की बीमारी के कारण उसे पत्र भेजने की इजाजत और तीसरे बैठने के लिए एक बेञ्च। पहली का उत्तर-विचार करूंगा, दूसरी का उत्तर—चिट्ठी लिखना, तीसरी का उत्तर "नहीं" मिला। मैंने गुजराती में पत्र लिखा। उसपर उसने रिमार्क लिखा कि आयन्दा अगरेजी में चिट्ठी लिखी जाय। मैंने कहा मेरी पत्नी अगरेजी नहीं जानती। मेरी चिट्ठी उसके लिए दवा का काम

देती है। कोई नई अववा विशेष बात तो मुझे लिखनी थी नहीं, तथापि अनुमति न मिली। अगरेजी में लिखने की आज्ञा से लाम उठाते से मैंने इनकार कर दिया। उसी दिन शाम को मुझे मेरी किताबें भी मिल गईं।

दोपहर को खाना खाया। यन्द कोठरी में सड़े २ ही खाना खाना पडा। कोई तीन बजे मैंने स्नान करने की अनुज्ञा चाही। नहाने की जगह मेरी कोठरी से कोई १२५ फीट के फासिले पर थी। दारोगा ने कहा, “ठीक है, मगर कपड़े उतार कर नगे होकर जाओ।” मैंने कहा—इसकी क्या आवश्यकता? मैं अपने कपड़े परदे के ऊपर रख दूँगा। तब उमने इजाजत दी और कहा कि देर मत लगाना। अभी मैं शरीर पोंछ भी न पाया था कि हज़रत ने पुकार मचादी—“गाथ्री, तैयार हो गये?” मैंने कहा—अभी होता हूँ। किसी हिन्दुस्नानी का मुँह तो यहाँ भाग्य ही से देखने को मिलता था। शाम को कम्रल, दोहर और चटाई सोने के लिए मिली। चौकी वगैर न थी। पापाने में भी दारोगा साथ रहता। वह मुझे जानता न था। इस लिये कहता—‘साम’ अर निकल! मगर ‘साम’ को तो बड़ी देर तक पापाने में बैठने की आज्ञा थी, सो वह उठे कैसे? अगर उठे तो उसे काम अधूरा छोड़ना पडे। कभी कभी दारोगा अथवा कोई काफिर ही इस तरह खडा रहता और “उठ—उठ” कह कर चिह्लाया करता।

काम दूसरे रोज़ मिला भी तो फर्श और दरवाजे साफ करने का, अर्थात् उन्हें पालिश करने का। दरवाजों पर रोगन चढा हुआ था। वे थे भी लोहे के बने हुए। फिर उन पर और पालिश करने की क्या जरूरत? मने एक एक दर-

याज को घसने में तीन तीन घण्टे लगाये पर मुझे तो उनमें कुछ भी फर्क न देना पडा। हाँ, फर्क में अलवत्ता कुछ रूपांतर दिखाई दिया। मेरे साथ काफिर भी काम करते थे। वे अपनी सजा की कहानी टूटी-फूटी अंगरेजी में कहते और मुझ से अपनी सजा का हाल पूछते जाते थे। कोई पूछता था, क्या तुने चोरी की है ? और कोई पूछता-क्या यहाँ शराब बेचने आया है ? उनका थोडा बहुत आशय समझ लेने पर जब मैं उन्हें अपनी कथा कहता तब वे कह उठते-“फाइट राइट” (अच्छा किया)। “अमलु गुयेट” (गोरें शराब है)। “डोन्ट पे फाइन” (जुरमाना न दाखिल करना)। मेरी कोठरी पर लिखा था ‘आयस्ते लेटेतु’ (एका त-गस कालकोठरी)। मेरी कोठरी के पाम ही पाच और कोठरियों वैसी ही देखने में आईं। मेरा पडोसी एक काफिर था। वह सून के प्रयत्न करने का अपराधी था। उसके पीछे तीन और काफिर थे। उन पर मृष्टि-विरुद्ध व्यभिचार करने का अपराध प्रमाणित हुआ था। ऐसे साथियों के बीच, ऐसी स्थिति में, मैंने प्रिटोरिया के जेलखाने में अनुभव प्राप्त करना आरम्भ किया।

भोजन।

ऊपर लिखी दशा के अनुसार ही भोजन भी था। सवेरे ‘पू पू’ दोपहर को तीन दिन ‘पू पू’ और आलू अथवा गाजर। तीन दिन बाल (बीन्स) और शाम को विना घी के चावल। बुधवार की दोपहर [को बाल (बीन्स), चावल, घी तथा रविवार को ‘पू पू’ के साथ चावल और घी मिलता था। विना घी के चावल मुदिकल से खाये जाते थे। अतपच घी न मिलने तक चावल न खाने का मैंने निश्चय किया। सवेरे तथा दोपहर को ‘पू पू’ कभी तो कच्चा और कभी राब

की तरह ढीला होता था। गाल (वीन्स) भी कभी कभी कच्चे मिलते थे। तथापि साधारणतया गाल ठीक पकते थे। नरकारी के दिन छोटे छोटे चार आलू (ये आठ आँस समझे जाते हैं) और गाजर के दिन तीन नहीं २ गाजरें दी जाती थीं। कभी कभी सबेरे चार या पाँच चमचा 'पू पू' मैं लेता परन्तु साधारण रीति से दो महीने मैंने दोपहर के भोजन पर विताये। इस उदाहरण से चोकसरस्ट के हमारे कैदी भाइयों को जानना चाहिए कि जब हमारे ही भाई रसोई बनाते थे और कच्ची रह जाने पर उन पर घे क्रोध करते थे, यह उचित न था। वे देखें कि इस दशा में मैं किस पर गुस्सा होता ? हा, यहाँ भी पेंटराज किया जा सकता है। पर मेरा खयाल है कि ऐसी शिकायत हमें शोभा नहीं देती। जहाँ सैफटों कैदी सत्र कर लेते हैं वहाँ शिकायत कैसी ? शिकायत का उद्देश्य सिर्फ एक होना चाहिए। वह ऐसा हो कि और कैदी भी उसके फायल हों। कभी २ मैं दारोगा से कहता कि आलू थोड़े हैं तो वह ओर ला देता था। पर इस तरह कितने दिन कट सकते हैं ? एक बार मैंने देखा कि दारोगा दूसरे के कटोरे में से मेरे लिए कुछ ला रहा है, तब से मैंने उससे कहना ही छोड़ दिया।

शाम को चावल में घी नहीं मिलता था, यह मुझे पहले से ही मालूम था और उसके इलाज करने की तद्वीरि भी मैंने सोच रखी थी। मैंने तुरन्त बड़े दारोगा पर यह बात प्रगट की। उसने कहा घी तो सिर्फ बुध तथा रविवार की दोपहर को मास के बजाय ही मिल सकता है। अधिक बार दरकार हो तो डाकूर से मिलो। दूसरे दिन मैंने डाकूर से मिलने की दरख्वास्त की। फलत में उससे मिलने गया।

डाकूर से मंने निवेदन किया कि चरगी के बजाय हिन्दुस्तानी कैदियों को घी मिला करे। उस समय बड़ा दारोगा भी उपस्थित था। उसने कहा—गाधी की माँग उचित नहीं। आज तक कितने ही हिन्दुस्तानी चरगी खा चुके हैं और मांस भी भोजन कर चुके हैं। जो चरवी लेते हैं उन्हें सूखे चावल मिलते हैं। सब पुरी से खाते हैं। जब सत्याग्रही कैदी थे तब वे सब भी खाते थे। कैद में दारिद्र्य होते और कैद से खाना होती दफे उनका वजन किया गया था। छूटती बार उन सब का वजन बढ़ गया था। डाकूर ने पूछा—फहो, अब तुम्हारा क्या कहना है? मंने कहा—यह बात मुझे नहीं जँची। तथापि अपने विषय में तो मंने कहता हूँ कि यदि मुझे तिलकुल घी के बिना ही रहना पड़ेगा तो मेरी तबियत जरूर खराब हो जायगी। डाकूर ने कहा, तो तुम्हारे लिए रोटी का हुक्म देता हूँ। मंने कहा—मंने कृतज्ञ हूँ, परन्तु मंने खास अपने लिए निवेदन नहीं किया है। जब तक सब लोगों को घी का हुक्म न मिले, मैं रोटी नहीं ग्रहण कर सकता। तब डाकूर ने कहा—तो फिर मुझे दोष न देना।

अब क्या किया जाय? बड़ा दारोगा अगर बीच में न बोलता तो हुक्म मिल जाता। उसी दिन मेरे आगे रोटी और चावल रखे गये। मैं भूखा था, पर सत्याग्रही इस तरह कैसे भोजन पा सकता है? मंने दोनों चीजें न लीं। दूसरे दिन मंने टिरेकूर से अर्ज करने की इजाजत चाही। इजाजत मिल गई। मंने उनके पास अर्जा भेजी। उसमें मंने जोहान्सबर्ग तथा घोक्सरस्ट्र के उदाहरण देकर कैदियों के लिए घी मिलने की प्रार्थना की। इस अर्जा का उत्तर १५ दिनों में मिला। वह यह था कि हिन्दुस्तानियों के लिए जब तक दूसरे

प्रकार के भोजन की तजवीज न हो तब तक मुझे हर रोज चावल के साथ गी दिया जाय। मुझे ऐसी ही खर न दी गई थी, इस कारण मने पहले दिन चावल, घी, रोटी, खुशी खुशी खा ली। मने कहा कि रोटी की जरूरत नहीं, पर उत्तर मिला कि डाकूर का हुकम है, इस लिए रोटी तो मिलेगी ही। अतएव रोटी भी १५ दिनों तक ली। परन्तु मेरी खुशी एक ही दिन तक रही। दूसरे दिन मने जाना कि हुकम तो ऊपर लिखे मुताबिक है। अतएव मने फिर से घी चावल और रोटी लेने से इनकार कर दिया। बड़े दारोगा से मने कहा कि जब तक सब लोगों को घी न मिलेगा, मैं यह नहीं ग्रहण कर सकता। डिपुटी गवर्नर भी उसके साथ थे। उन्होंने कहा यह तुम्हारी इच्छा पर अचलम्बित है। मने फिर डिरेक्टर को लिखा। मुझे उत्तर मिला कि भोजन नेटाल की तरह मिलेगा। मने उसकी आलोचना की, और मैं स्वयं घी इत्यादि नहीं ले सकता आदि बातें उस में लिखा दीं। अन्त में कोई डेढ महीने के बाद हुकम आया कि जहाँ २ हिन्दुस्तानी कैदी अधिक हों, वहाँ २ घी मिला करे। इस तरह विजय प्राप्त करने पर डेढ मास बाद मेरे रोजे (उपवास) छूटे। मने अन्त के कई मास तक चावल, घी और रोटी खाई। मने संवेरे भोजन करना बन्द कर दिया था और चावल रोटी लेना शुरू करने के बाद भी दोपहर को जब "पू पू" आता तो वह भी कभी कभी आठ-दस चम्मच ले लेता। 'पू पू' हमेशा तरह तरह से बनाया जाता था। रोटी तथा घी से मुझे काफी तसल्ली मिल जाती थी। इससे तबियत भी दुरुस्त हो गई थी।

मने अभी ऊपर कहा है, कि मेरी तबियत दुरुस्त हो गई थी। इसका कारण यह था कि जब मैं पकाहारी हो रहा

या तब मेरी तबियत खराब हो गई थी, कमजोरी आ गई थी और कोई दस दिन तक मुझे सन्त आधा-सीसी की पीमारी रही थी। आधेरा तथा डाँती के विगड जाने के लक्षण जान पड़ने लगे थे।

काम की बदली।

डाँती खराब होने का कारण इस तरह था। मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि मुझे फर्श तथा दरवाजा साफ करने का काम दिया गया था। कोई दस दिनों तक यह काम करने के बाद फटे हुए कम्बलों को सीकर जोड़ने का काम मिला। यह काम खरीफ था। सारा दिन कमर झुका कर फर्श पर काम करना पड़ता था। सो भी कोठरी में बैठ कर। इसमें शाम को मेरी कमर दर्द किया करती थी। मेरी आँखों में भी दर्द हुआ करता। मेरी राय में कोठरी की हवा तो हमेशा ही खराब होती है। बड़े दारोगा से मने एक बार कहा भी कि मुझे बाहर खोदने इत्यादि के काम पर लगा दीजिए और यह नहीं तो खुली हवा में कम्बल इत्यादि सीने दीजिए। पर उसने दोनों बातें नामज़ूर कीं। इस बारे में भी मने डिरेक्टर को लिखा। अन्त में डाक्टर का हुक्म हुआ। यदि मुझे खुली हवा में काम करने की इजाजत न मिलती तो मेरे ख्याल में मेरी तबियत अधिक खराब हो जाती। इस हुक्म के मिलने में कितनी ही श्रद्धाचनें दरपेश हुई थी परन्तु उनके धर्षण की यहा ज़रूरत नहीं। इससे इतना तो हुआ कि मेरे भोजन में परिवर्तन हुआ और खुली हवा में काम करने का भी अवसर मिला। यों मुझे दोहरा लाभ हुआ। जब कम्बल बुनने का काम मिला तब मैंने सोचा था कि इस एक कम्बल के बुनने में एक हफ्ता लगेगा और तब तक मेरी अवधि समाप्त हो

जायगी। परन्तु हुआ इसके विपरीत, पहला कम्यल धुनने के बाद तो मैं एक जोड़ी दो दिन में ही तैयार करने लगा। तब और काम भी अर्थात् गनीयान में ऊन भरना, टिकेट पाकेट सीना इत्यादि काम मिल गये।

— मैंने उद्युते सत्याग्रहियों से कहा कि यदि तुम धीमार बनकर—स्वास्थ्य खराब करके—जेल के बाहर निकलोगे तो तुम्हारे सत्याग्रह की कमजोरी समझी जायगी। धीरज रख कर हम उचित उपाय का अवलम्बन कर सकते हैं। चिन्ता करने से भी स्वास्थ्य खराब होता है। सत्याग्रहियों को तो जेल को नएल समझना चाहिए।

मैं इस विचार से बड़ा दुखी होता कि कहीं मुझे स्वयं न भीमार होकर जाना पड़े। पाठकों को याद रखना चाहिए कि मेरे लिए जो घी का दूधम हो गया था उसकी चेष्टा न करना तो सत्याग्रह में मेरी तवीयत खराब हो जाती। परन्तु औरों के लिए यह नियम लागू नहीं। प्रत्येक कैदी जब वह अकेला जेल में हो तो अपनी निजी शिकायत दूर करने की फोशिश कर सकता है। प्रिटोरिया में मेरे ऐसा न करने का खास सबब था। इसी कारण मैं अपने अकेले के लिए घी का दूधम नहीं मान सकता था।

और और रद्दोपद्रव।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि जो दारोगा मुझ पर तेनात था वह मेरे साथ कुछ कड़ा व्यवहार करता था। पर यह हालत अधिक दिनों तक न रही। जब उसने जाना कि मैं तो स्वयं सरकार से भी भोजन इत्यादि विषयों में झगड़ा कर बैठता हूँ, परन्तु साथ ही उसकी सभी आशाओं का पालन भी करता हूँ, तब उसने अपना चरताव बदल दिया। वह मुझे

जो मन आता करने देता । यहा तक कि पागवाने और नहाने इत्यादि की अडचन दूर हो गई । इसके सिवा घट यह भी नहीं जताता कि उसका हृदय मुझ पर चल सकता है । उस का तगादला होने पर उसकी जगह जो दूसरा दारोगा आया वह तो घडा ही उदार था । वह मुझे उचित और योग्य सुभीता देने की चिन्ता रखता । वह कहता कि जो आदमी अपनी जाति के लिए लड़ता है उसे मैं पसन्द करता हूँ । मैं स्वयं लड़ने वाला हूँ । तुम्हें मैं कैदी नहीं समझता । वह इस तरह बड़ी आशा भरी बातें करता ।

थोडे दिन बाद मुझे सरेरे शाम आधे आधे घटा तक जेल की गली में टहलने की इजाजत मिली । जब बाहर बैठ कर काम करने लगा तब भी यह सिलसिला जारी रहा । जिन कैदियों को बैठकर काम करना पड़ता था उन पर भी यह नियम लागू समझा जाता है ।

मेरी माग के अनुसार मुझे बॅच नहीं मिली, थोडे दिनों के बाद घटे दारोगा से उसने वह भी दिलवा दी । जनरल स्मट्स की ओर से मुझे दो धार्मिक पुस्तकें भी मिली थीं । इन बातों से मने अनुमान किया कि मुझे जो कष्ट दिया जा रहा है वह उनकी आज्ञा से नहीं बल्कि उनकी तथा औरों की लापरवाही और मुझे काफिरों में गिनने के कारण । और यह बात तो मैं अच्छी तरह जान गया कि मैं जो अकेला रफखा गया हूँ उसका कारण केवल यही है कि मैं आरों से बात-चीत न कर सकूँ । कुछ कोशिश करने पर मुझे नोटबुक और पेंसिल की भी इजाजत मिली ।

। डिरेक्टर से मुलाकात ।

मेरे प्रिटोरिया पहुचने के आरम्भ में खास तौर पर

आज्ञा लेकर मि० लीचिन स्ट्राइन मुझ से मिले । वे सिर्फ आफिस के काम के सम्बन्ध में आये थे । परन्तु उन्होंने मुझ से अपनी राजीवुशी के हालचाल बगैरह भी पूछे । इस का जवाब देने में मैं, गुशन था । परन्तु उन्होंने जब बहुत ही आग्रह किया तब मैंने कहा-मैं जियाद तो नहीं कहता परन्तु इतना ही कहता हूँ-मेरे साथ बड़ा निर्दय-घातक-बरताव हो रहा है । इस तरह मुझे सतारकर जनरल ममट्स मुझे हराना-सत्याग्रह में हटाना-चाहते हैं, परन्तु, यह तो कभी सम्भव नहीं । जो जो यातनायें मुझे दी जायगी, मैं सहने को तैयार हूँ । मेरा मन शान्त है । यह बात आप प्रकट न कीजिएगा । जब छूट जाऊंगा, स्वयं सब बातें ससार के सम्मुख रखूंगा, तथापि मि० लीचिन स्ट्राइन ने यह कया मि० पोलक से कह दी । मि० पोलक भी उसे नहजम कर सके । उन्होंने भी श्रीरों से कह सुनाई । जब मि० डेविड पोलक ने लार्ड सेलवारेन को लिया और तहकीकात आरम्भ हुई, तब डिरेक्टर मुझ से मिलने आये । उनसे भी मैंने वेही बातें कहीं । इसके अतिरिक्त उनसे मेने उन गुरियों का भी जिक्र किया जिनका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूँ । इससे कोई दस दिन बाद मुझे सोने के लिए चौकी, तकिया तथा रात को पहनने के लिए कमीज और नाक पोंछने को रुमाल मिले । इस विषय पर मैंने लेख लिखाया है कि इस तरह प्रत्येक हिन्दुस्तानी कैदी को इन चीजों की आवश्यकता है । यदि सच कहा जाय तो सोने-बैठने के तारे में गोरों की अपेक्षा हिन्दुस्तानी अधिक नाजुक है । पिना तकिया के काम चलाना, उनके लिए बड़ा कठिन है ।

इस तरह स्वाजे तथा खुली हवा में काम करने के

सुभीते के साथ सोने की भी सुविधा हो गई। पर मेरी तक-
बीर तो आगे दौड़ती थी। चौकी मिली भी तो वह खटमलों
से भरी हुई। मैं तो कोई दस दिनों तक उसे काम में न लाया।
फिर जब बड़े दारोगा ने उसे ठीक कराया तब मैं उस पर
सोने लगा। पर इस बीच मैं मुझे फर्श पर कमल डालकर
सोने की आदत पड़ गई थी। इस ने चौकी के कारण मुझे
कुछ विशेष फर-फार नहीं जान पड़ा। तकिये का काम मैं
अपनी पुस्तकों से लेता था। अतएव तकिया मिलने से भी
कोई विशेषता अनुभव न हुई।

हथकड़ी पटनाई गई।

आरम्भ में मेरे साथ जा, चरताव किया जाता था,
आर उससे जो विचार मेरे मन में आये थे, नीचे लिखी घटना
से वे और भी पुष्ट हो गये। चार ही पाच दिनों के बाद
मिसेज पिले के मुद्दमें मैं मुझे गवाही देने का सम्मन
मिला। मुझे अदालत में लिया, ले गये। उस समय मेरे हाथों
में हथकड़ी डाली गई। दारोगा ने उसे कसा भी जोर से था।
मैं तो समझता हूँ यह अनजान में ही किया गया था। बड़ा
दारोगा भी मुझे देखने आया था। उससे मैंने एक किताब
ले जाने की मन्जूरी मांगी। उसने समझा कि बेडी से मैं शर-
माता हूँ। उसने कहा कि पुस्तक दोनों हाथों में थाम लो
ताकि बेडी देख न पड़े। यह सुन कर मैं तो हँस पड़ा। बेडी
डालने में मैंने तो अपना गोरव समझा। जो पुस्तक मैंने ली
थी वह अनायास ही पेसी मिल गई थी, जिसके नाम का
अर्थ हिन्दी में होता है, "ईश्वर का इजलास तेरे हृदय में है।"
मैंने मन में कहा यह भी मौका अच्छा रहा। बाहर से मैं चाहे
जितना सड़क भोग पर यदि मेरा हृदय-पेसा है कि उस में

ईश्वर निवास कर सके तो फिर मुझे किसी की भी परवाह नहीं। इस ढंग से मुझे अदालत में प्रैदल जाना पडा। लोटती वार जेल की ठेला गाडी थी। हिन्दुस्तानियों को शायद यह खबर लग गई थी कि मैं जाने वाला हूँ। क्योंकि अदालत के सामने कितने ही हिन्दुस्तानी जमा थे। उनमें से मिस्टर व्यम्बरूलाल व्यास मिम्मेज पिल्ले के वकील के द्वारा मुझसे मिल सके थे। एक बार और मुझे अदालत जाना पडा था। उस दफे भी हथकडी डाली गई थी। परन्तु जाती आती वार ठेला गाडी थी।

सत्याग्रह की महिमा।

ऊपर मने जो बातें लिखी हैं उनमें कितनी ही तो नगण्य हैं। परन्तु उनके सविस्तर वर्णन का उद्देश्य यह है कि छोटी घडी सत्र बातों में सत्याग्रह लागू हो सकता है। छोटे दारोगा ने मुझे जो शरीर-कष्ट दिये उन्हें मैंने म्वीकार कर लिया। इसका फल यह हुआ कि मेरा मन शान्त रहा। यही नहीं, बल्कि वे ही अडचनें उन्ही लोगों को दूर करनी पडीं। यदि मैं उनका प्रतिरोध करता तो मेरा मनोबल विखर-जाता और मुझे जो बडे काम करने थे वे न हो पाते। इसके सिवा दारोगा मेरे शत्रु हो जाते। भोजन के विषय में अपनी टेक रखने, आरम्भ में दुःख सहन करने से वह अडचन भी दूर हो गई। क्षत्र बातों के विषय में भी ऐसा ही समझा जा सकता है। परन्तु बडे से बडा लाभ तो यह हुआ कि शारीरिक कष्ट सहन करने से मैं अपने मन का बल बहुत ही बढ़ा हुआ देखता हूँ। इन तीन महीनों ने मुझे बडा लाभ पहुंचाया। इसी की बदौलत आज मैं और भी अधिक कष्ट भोगने को तैयार हूँ। मैं देखता हूँ कि सत्याग्रही की सहायता ईश्वर

सर्वदा करता है। और सत्वाग्रही को परीक्षा लेने में भी उसको उतना ही फट्ट दिया जा सकता है जितना वह जगद्वर्ता सहन कर सकता है।

मैंने क्या पढ़ा ?

मेरे दुःख की अथवा सुख की, दोनों की कहानी तो पूरी हो गई। उन तीन महीनों में मुझे कितने ही लाभ हुए। उन सब में बड़ा लाभ मैंने यह पाया कि मुझे पढ़ने का खूब मौका मिला। मैं स्वीकार करता हूँ कि पहले पहल तो किन्हीं विचारों के कारण मैं दुःख से ऊपर उठता था। फिर जिनके मन है—हृदय है—उनका मन तो चन्द्र की तरह छटपटाता है। ऐसे समय में बहुतेरे आदमी हिम्मत हार जाते हैं। उस समय मेरी पुस्तकों ने मेरा खून बचाव किया। हिन्दुस्तानी भाइयों के समागम की अधिकांश पूति मेरी पुस्तकों ने की। हमेशा कोई तीन घण्टे तक मुझे पढ़ने का अयकाश मिला करता था। सरेरे एक घण्टे फुरसत रहती थी, क्योंकि मैं खाना नहीं खाता था। वही समय बच रहता था। शाम को भी यही हाल था। और दोपहर को खाना भी खाता था और पढ़ता भी जाता था। शाम को तो यदि विशेष थका हुआ न होता तो बत्ती जलने के बाद भी पढ़ता था। शनिवार और रविवार को तो खून ही बच मिलता। इस बीच मैंने कोई तीस किताबें पढ़ी, और कितनी ही का मतन भी किया। पुस्तकें अंगरेजी, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत तथा तामिल भाषाओं की थीं। अंगरेजी पुस्तकों में उल्लेख योग्य टालस्टाय, इमरसन तथा कारलाइल की पुस्तकें थीं। पहली दो पुस्तकों का सम्बन्ध धर्म से है। उनके साथ मैंने बाइबिल भी जेल में से ली थी। टालस्टाय के लेख तो इतने सरस और इतने सरल हैं कि

चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हें पढ़कर उन से लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढ़कर साधारणतः वह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसी करता था वैसा ही करता भी रहा होगा।

कारलाइल का पुस्तक फ्रेंच राज-क्रान्ति पर है। वह प्रभावशाली है। उस से मैं जान गया कि हिन्दुस्तान की दुःशा मिटाने की राह हमें गोरी प्रजा से नहीं मिल सकती। मेरा विश्वास है कि राज-क्रान्ति से फ्रेंच प्रजा को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मैजिनी का भी यही खयाल था। इस विषय में बहुत मत-भेद है। उसका विचार करने का यह स्थल नहीं। परन्तु उस इतिहास में भी कितने ही सत्याग्रहियों के उदाहरण देखने में आये। गुजराती, हिन्दी और संस्कृत इन पुस्तकों में स्वामी जी की तरफ से भेजी गई वेद-शब्द-सज्ञा, भट्ट केशवराम के प्राप्त उपनिषद्, मि० मोतीलाल दीवान की भेजी हुई मनुस्मृति, फिनिक्स में छपा हुआ रामायण-सार, पातञ्जलि पाण्डुराज, नाथूराम कृत आहिक-प्रकाश, प्रोफेसर परमानन्द की दी हुई सन्ध्या की गुटका गीता तथा स्वर्गीय कवि रायचन्द्र की पुस्तकें, ये किताबें पढ़ीं। इन सब में से विचार करने की बहुत सामग्री मिली। उपनिषद् से मुझे बहुत शान्ति मिली। उसका एक वाक्य तो मेरे हृदय पर अंकित हो गया। उसका सार यह है—“जो कुछ करो आत्मा के कल्याण के लिए करो।” और भी कितनी ही विचारणीय बातें उपनिषदों में मुझे मिलीं। परन्तु सब से अधिक सन्तोष कवि रायचन्द्र की पुस्तकों से मिला। उनके लेख तो मेरी राय में सब के आदर के पात्र हैं। टालस्टाय की तरह उनकी शैली भी उच्चकोटि की है। इस के तथा सन्ध्या की

रास के गहर के हिन्दुस्तानियों को भी तामिल जानना चाहिए ।

उपसंहार ।

मेरी इच्छा है कि इस कहानी को पढ़ कर, जिन्हें वेद पर कलक नहीं है, वे लोग अपने देश से प्यार करें, और सत्याग्रही बनें तथा - जिन्हें कलक है वे उस पर दृढ़ रहें । जिन्होंने अपने धर्म को नहीं जाना उन्हें अपने देश पर सच्ची कलक नहीं हो सकती । मेरी यह भावना अधिक दृढ़ होती जाती है । और विषयों में तो —

अलख नाम युन लागी गगन में
मगन भया मन्दिर में राजी
आमन - मारी सुरत दृढ़, धारी
दिया अगम घर डेरा जी
और भी—

करना फकीरी क्या दिलगीरी-
सदा मगन मन रहना जी—

क अनुसार दुनिया में रह कर भी चिरागो और साधु हो सकते हैं ।

हो हास अथवा हो रुदन उसकी प्रकट छवि देख लू ।
तो मैं जगत में मनुज-जीवन मफल अपना लेख लू ॥
जिन से कभी सुख स्वप्न में भी दर्श-सुख लेते बना ।
भाती नहीं उनके मनों में और कोई भावना ॥

इति ।

'प्रताप कार्यालय' की कुछ पुस्तकें

देवी जोन ।

अर्थात् स्वतन्त्रता की मूर्ति ।

यह फ्रांस देश को विदेशियों की दासता की बेड़िया से मुक्त कर देने वाली वीर-बाला जोन आफ आर्क की जीवनी है । इस देवी को उसके शत्रुओं ने उसके अनन्य देश-प्रेम के लिए ही जीते जी चिता में जला दिया था । पुस्तक में फ्रांस की तत्कालीन अवस्था का भी वर्णन है । मुखपृष्ठ पर देवी जोन के चित्र में जलते समय का रोमाञ्चकारी दृश्य का चित्र दिया गया है । पुस्तक इतनी रोचक और भावपूर्ण है कि कुछ ही महीनों में इसकी दो हजार प्रतिया बिक चुकी हैं । मृत्यु ॥

मेरे जेल के अनुभव ।

इस पुस्तक के लेखक महात्मा गांधी हैं । सत्याग्रह का यथार्थ तत्व जानना हो तो इस पुस्तक को अमूल्य पढ़िए । मृत्यु ॥

राष्ट्रीय वीणा ।

'प्रताप' में देशभक्ति पूर्ण जो कविताएँ प्रकाशित हुई हैं उन्हीं का इन्हीं स गूहा है । मृत्यु ॥

जर्मन जासूस की रामकहानी ।

यह रामकहानी पर ऐसे आदमी की लिखी हुई है जो वया जर्मनी के जासूसी महल में काम कर चुका है । इस में योत्प के राष्ट्रों के दाव पेंचों का सासा दिग्दर्शन है । इस पुस्तक की सच्चाई के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसके लेखक प्रसद्धि जासूस डा० ब्रेज के अमेरिका चले जाने पर इंग्लैंड की पार्लियामेंट तक में प्रश्न हुए थे । पुस्तक पढ़ कर दातों तले उगली दगानी पड़ती है । मृत्यु ॥

हिन्दीप्रदीप ग्रन्थावली की तीसरी पुस्तक ।

सौ अज्ञान और एक सुज्ञान

एक

प्रबन्ध कल्पना ।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक

स्वर्गवासी पं० बालकृष्ण भट्ट रचित ।

रेजीष, सत्सङ्गमयामुहित्वमन्तसङ्ग त्वरया विहाय
धन्योऽपिनिन्दा लभते कुसङ्गात्सिन्दूरत्रिन्दुर्विधवा ललाटे ।

प्रकाशक—

महादेव भट्ट, यहियापूर, प्रयाग ।

बदरी प्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में छपा

आषाढ, १९७०

तीसरा संस्करण

निवेदन ।

निसर्गादारामे तरुकुलसमारोपसुकृती
कृती मालाकारी वकुलमपि कुत्रापि निदधे ।
इदं को जानीते यद्यमिह कोणान्तरगतो
जज्जजाल कर्त्ता कुसुमभरसौरभ्यभरितम् ॥

जगन्नाथ परिडतराज ।

ऊपर के श्लोक के अनुसार भट्टजी ने उक्त चतुर माली के समान हिन्दी साहित्य की याटिका सजाने के लिये जहा बहुत से ग्रन्थ या लेख के वृक्ष या लतायें लगायीं वहा जैसे उस माली ने एक कोने में वकुल (मौलसरी) का वृक्ष लगाया उसी तरह से-किसी भाशा से नहीं धरन् अपने हिन्दी लिखने के चस्के में आस्वाभाविक रूप से—इस “सौ अज्ञान और एक सुज्ञान” को भी लिख डाला । कौन जानता था कि किसी एक कोने में पडा हुआ उस वकुल वृक्ष के समान, जो अपने फूल की मीठी र सुगन्धि से ससार भर को सुगन्धित कर देता है, इस छोटी सी पुस्तक की यह नौवत आरिगी और हिन्दी के प्रेमीजन इसे इतने प्रेम से अपनावेंगे कि यह “हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन” को “प्रथमा परीक्षा” में पाठ्य पुस्तक नियत की जाय, यहीं तक नहीं धरन अपनी मीठी सुगन्ध इसने

इतना फैलाया कि वह काशी के "हिन्दू विश्वविद्यालय" तक पहुँची और यह पुस्तक उक्त Benares Hindu University (काशी विश्वविद्यालय) के Admission Examination (प्रवेश परीक्षा) के course (पाठ्य पुस्तक) में रखी गई। जब दो बड़े बड़े मुख्य व प्रतिष्ठित स्थानों तक इसकी पहुँच हो गई है तो हमें बहुत कुछ आशा है कि यह सरकारी Universities में भी आदरपूर्वक स्थान पावे। जो बातें भट्टजी अपने जीवन में चाहते थे वह उनके जीवन में न पूरी हुई इसका दुःख है पर "देर प्राये दुस्त आयें" के समान अपने प्रेमियों के बीच अपनी प्रतिभा को आदरपूर्वक प्रसार पाते हुये देह निःस्रन्देह उनकी आत्मा सन्तुष्ट वा आनन्दित होगी।

प्रथम प्रथम इस ग्रन्थ को भट्टजी ने स्वसम्पादित "हिन्दी प्रदीप" के लिये लिखा था और यह उसी के १४, १५, १७ तथा १८वीं जिल्दों में पूरा हुआ, फिर अपने कई मित्रों और रसिक पढ़नेवालों के अनुरोध से सन् १९०६ ई० में भट्टजी ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। पहिला संस्करण इसका केवल ५०० प्रतियों का हुआ पर उस समय के हिन्दी के प्रेमी ऐसे न निकले कि बँट से दाम निकाल इसे खरीद कर पढ़ते। मुझे लेकर पढ़नेवाले प्रायः बहुत से सच्चे हिन्दी के प्रेमी मिले इससे केवल १०० या १५० प्रतियों को छोड़ बाकी सब यहाँ हिन्दीप्रेमियों की सेवा में पहुँची, इधर सन् १९१४ ई० में "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" ने इसे अपनी "प्रथमा परीक्षा" के लिये पाठ्य ग्रन्थ नियत किया और एक भी प्रति न रहने के कारण इसके दूसरे संस्करण की आवश्यकता पड़ी। भट्टजी ने हिन्दी की सेवा जो कुछ की है वह किसी से छिपी नहीं है। उन्होंने हिन्दी लिपि कर सिवाय अपने बँट से कुछ देने के हिन्दी की बदौलत कुछ

पैदा नहीं किया कि उसे हम लोगों के लिये छोड़ जाते जिससे उनके बहुत से ग्रन्थ जो अप्रकाशित तथा "हिन्दी प्रदीप" से निकाल कर अलग छपने के लिये पड़े हुए हैं छापे जाते। १००) या १२५) रुपये कहा से आते कि यह पुस्तक प्रकाशित की जाय इससे हिन्दी नाट्यसम्मेलन ने अपने निज व्यय से इसका दूसरा संस्करण निकाला और इसका मूल्य जो ॥) था ।=) रक्का। हिन्दी के लिये दैव सानुकूल हो रहा है जिसका फल यह हुआ कि उसी लगाव में उसकी सानुकूलता की दृष्टि इस ओर भी फिरी और "हिन्दी-नाट्य सम्मेलन" तो इसे पहिले ही से अपनाये हुये था, "बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी" ने भी अपने यहां इन्ने स्या दिया और इसके तासरे संस्करण के निकालने की आवश्यकता हुई। आज फल महंगी सब ही ओर अपना पैर फैलाये हुए है, विशेष कर प्रेस की चीजों पर तो अपना पूरा ही हाथ जमाये हुये है। कागज, स्याही आदि दूने चौगुने भाव तक चढ गये हैं। दूसरे जब इसकी कदर धड़ी है तो उसी के अनुसार इसकी हेसियत भी बढ़ाना उचित हुआ, इससे इसमें ग्रन्थकर्ता स्वर्गीय परिउत वालरुणजी भट्ट की सक्षित जीवनी ओर और अन्त में विश्वविद्यालय तथा सम्मेलन के परीक्षार्थियों के सुभाते के लिये कठिन शब्दों के सरल अर्थ, व्युत्पत्ति, तथा जहा जहा जो जो थलकार हैं इत्यादि पर सक्षेप टिप्पणिया भी दी गई हैं, इससे इसका मूल्य ॥) रक्का गया है।

भट्टजी की जीवनी तथा पुस्तक के अन्त में जो टिप्पणिया दी गई हैं वह उन्हीं के सुयोग्य पुत्र प० जनार्दनजी भट्ट ए० ए० की रची हुई है। यदि आवश्यकता हुई और परीक्षार्थीय इसके द्वारा अपना कुछ लाभ समझेंगे तो इस पुस्तक पर

एक बृहत् नोट उन्हीं से लिखाकर प्रकाशित किया जायगा तथा भट्टजी के लेखों का संग्रह जो अद्य तक अप्रकाशित है, जिसके पढ़ने के लिये हिन्दीप्रेमीजन लौ लगाये हुये हैं "साहित्य सुमन" तथा "नैतिक सुमन" के नाम से शीघ्र ही एक मान के भीतर में प्रकाशित किया जायगा। आशा है कि इसे भी सम्मेलन तथा हिन्दू विश्वविद्यालय आदि संस्थाएँ इस योग्य समझेंगी कि इसे अपने यहाँ स्थान दें।

प्रकाशक ।

परिंडत बालकृष्ण भट्ट

की

सक्षिप्त जीवनी ।

स्वर्गीय भट्ट जी के पूर्व पुरुष मालवा प्रांत में उज्जयिनी या अयन्ती के पास शिप्रा नदी के तट पर के रहने वाले मालवीय (श्रीगौड़) ब्राह्मण थे । मुसलमानी राज्य के उथला पथल होने पर मालवा छोड़ कर वे लोग कालपी के पास बेतवा नदी के किनारे जितकरी गाव में आ बसे । भट्ट जी के प्रपितामह श्याम जी भट्ट एक चतुर और विद्वान पुरुष थे । वे राजा साहब कुलपहाड के यहां एक उच्च पद पर नौकर थे । उनके पांच पुत्र हुये जिनमें से सब से छोटे प० विहारीलाल पर उनका अधिक स्नेह था । अपने पिता प० श्याम जी भट्ट के देहान्त के बाद ये प्रयाग में आकर बसे । तभी से ये प्रयाग में रहने लगे । प० विहारीलाल जी के बेणी प्रसाद और जानकीप्रसाद दो पुत्र हुये । प० बेणीप्रसाद के भी दो पुत्र हुये । उनमें से प० बाल कृष्ण भट्ट ज्येष्ठ और प० बालमुकुन्द भट्ट कनिष्ठ पुत्र हैं ।

हमारे चरितनायक प० बालकृष्ण जी भट्ट का जन्म विक्रमी संवत् १६०१ आषाढ़ कृष्ण द्वितीया रविवार ता० ३ जून सन् १८४४ को और मृत्यु ७० साल की उम्र में संवत् १९७१ श्रावण कृष्ण १३ सोमवार ता० २० जुलाई सन् १९१४

ई० फो हुई। इनकी मा कुछ थोड़ा पढी लियी थी। जिनकी
 रूपा से प्रारम्भ ही से विद्या तथा सत्सङ्ग का इनको व्यसन
 लग गया। बहुत से खेल और गुने घुरे व्यसन की ओर जिनमें
 पढकर बालक प्राय नष्ट हो जाते हैं इनकी माता की रूपा से
 इनका ध्यान ही न गया। पिता केवल इनके जन्ममात्र के हेतु
 हुये। लालन पालन का सब सुख इन्हें ननिहाल में मिला।
 ननिहाल वाले, सस्कृत के अच्छे विद्वान थे अतएव आप भी
 १२ वर्ष को उम्र तक सस्कृत ही पढते रहे और इस समय
 तक में आपको एक काण्ड अमरकोष और तद्धितान्त कौमुदी
 कण्ठ हो गई थी। सन् ५७ के गदर के बाद देश में अङ्गरेजी
 राज्य का दबदबा होने से अङ्गरेजी भाषा का मान बढ़ने लगा।
 इसी समय इनके पिता और चाचा ने चाहा कि पठन पाठन
 ऐसे कुकर्म से हटकर यह बालक दूकानदारी के काम में
 दत्त चित्त होकर व्यापारकुशल हो परन्तु माता की प्रेरणा से
 जिनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि मेरा पहला लड़का अच्छा
 विद्वान हो उस ओर से चित्त हटाये पठन पाठन ही में लगे
 रहे। उनकी इस बात के न मानने ही के कारण आप घरवालों
 के कोप के भाजन हुये और पैत्रिक सम्पत्ति से पूर्णतया इनको
 हाथ धोना पडा। बुद्धिमती तथा दूरदर्शिनी माता ने उस
 समय अङ्गरेजी पढने से बहनों की बुद्धि तथा धन में उन्नति
 देख उन्हें अङ्गरेजी पढाने को सुझाया। अस्तु उदारहृदय
 माता की आज्ञा मानये स्थानीय मिशन स्कूल में भरती हो
 गये और घर पर सस्कृत भी पढते रहे। तीव्र बुद्धि होने से
 ये ईसाइयों के मुकाबिले में भी बार्डविल की परीक्षा में कई
 बार अन्वल इनाम के अधिकारी हुये। पादरी लोग विशेष
 कर डेविड नाम का एक पादरी इनको बहुत ही मानता था।

प्रायः स्कूल से छात्रवृत्ति और पढ़ने की पुस्तकें इनको मिला करतीं। पर ये धराबर तिलक लगाकर जाते जिसे ईसाई लोग बुरी दृष्टि से देखते इसपर घादविवाद भी होता। इसी स्कूल में ये Entrance तक धरायर पढ़ते रहे। उस समय Entrance की परीक्षा यहां न होकर काशी ही में होती थी। यहां से इने गिने कुछ विद्यार्थी इस परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये काशी गये। पर द्वितीय भाषा (Second Language) सिधाय इनके सबों की ऊर्दू या फार्सी थी। सब विषय की परीक्षा हो गई, उर्दू या फारसी का परचा जो औरों को करने के लिये दिया गया वही परचा इनके पास भी आया। आपने कहा "मैं अपनी द्वितीय भाषा पहिले से संस्कृत लिखा चुका हूं मुझे संस्कृत में करने के लिए परचा मिलना चाहिये"। उत्तर मिला "केवल तुम्हारे लिए एक खास प्रबन्ध नहीं किया जा सकता"। लाचार उस साल ये रह गये दूसरे साल भी इसी प्रकार की गड़बड़ी के कारण Entrance न पास कर सके। तब पादरी डेविड के कहने से ये इसी स्कूल में आप अध्यापक हो गये। पर जैसा ऊपर कहा गया है कुछ धार्मिक विवाद होने के कारण अपनी स्वतंत्रता में विशेष पढ़ते देख इन्हें कुछ दिनों के बाद यह नौकरी छोड़नी पड़ी। स्कूल छोड़ कर ये पुनः संस्कृत का अध्ययन करने लगे। व्याकरण और विशेष कर साहित्य का इन्होंने खूब मनन किया। इसी समय माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के चचा पण्डितवर गदाधर जी मालवीय से जो मिर्जापुर के मिशन स्कूल के हेड पण्डित थे आपका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। उक्त पण्डित जी, संस्कृत के हर एक विषय के विशेष करके साहित्य और व्याकरण के प्रगाढ़ पण्डित थे।

भट्ट जी में सस्कृत साहित्य का जो प्रेम था वह सब परिडत गदाधर जी की कृपा का फल था। सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता भी विशेष कर इन्हीं परिडत जी के सत्सङ्ग से इन्हें प्राप्त हुई। इनके पिता वा चाचा बड़े व्यवसायी थे जिससे लक्ष्मी के तो ये अत्यन्त कृपापात्र थे, पर साथ ही सरस्वती देवी के कट्टर शत्रु थे और इसीलिए तथा इनकी सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता देख ये बहुत ही गये बीते हुआ में समझे जाने लगे। समाज और विशेषकर घरवाले इन्हें "किरिस्तान" "विधर्मी" आदि शब्दों से अपमान करने लगे। अभाग्यवश धिनौनी हिन्दू प्रथा के अनुसार इनका विवाह बहुत ही कम उम्र में हो गया था। मसल है "पर बीती कहें या अपनी बीती" तो ये अपनी ही बीती बातों के कारण बाल विवाह के कट्टर शत्रु थे। "हिन्दी प्रदीप" को कोई भी अङ्क ऐसा न मिलेगा जिसमें इस विषय पर जोर के साथ टीका टिप्पणी न की गई हो। बाल विवाह के विषय में आप एक जगह लिखते हैं —

"धर्मशास्त्र के किसी एकसाली ग्रन्थ में 'बाल विवाह धर्म नहीं लिखा है, प्रत्युत महा अधर्म और अन्याय अलबत्ता निश्चय किया गया है। कन्या को अलबत्ता योग्य घर के साथ विवाह देना कहा गया है, सो तभी जब वह विवाह के योग्य हो और पुत्र का विवाह करना पिता का धर्म कहीं नहीं कहा गया, किन्तु उचित गुण और विद्या उपार्जन के उपरान्त अपने मन से यदि उसकी रुचि हो तो वह विवाह करके गृहस्थी के बंधन में पड़े नहीं तो स्वच्छन्द रहकर वह लोक परलोक के बड़े बड़े कामों में तत्पर हो।"

वास्तव में यह कुरीति समाज में इतने जोर से प्रचलित है कि बड़े बड़े देश की उन्नति का बीड़ा उठानेवाले Public में तो

बड़े जोर के साथ इसका विरोध करते हैं पर घर में अत्यन्त स्वार्थ में मग्न हो इस कुरीति के पोषक हैं। घर में यदि कोई लड़की या लड़का है तो बस ब्याह देना ही सिद्ध, योग्य वर वा कन्या है या नहीं इसका कुछ विचार नहीं, मानो उसे ब्याह जीवन के एक बड़े भारी कार्य से मुक्त हो जाना है। घर में एक कोई बड़ी भारी गमी हो गई है मुर्दा पडा हुआ है, पर नहीं, जबतक कि ब्याह से छुट्टी न पा लें रोने, धोने, रज, गम का काम मुलतवी रखेंगे। शोक ! जो विवाह का प्रश्न मनुष्य के जीवन में एक बड़ा भारी प्रश्न है, जिसपर जीवन का घनना या विगडना निर्भर है उसी प्रथा को हमारे हिन्दू भाई केवल अपने स्वार्थ के लिये किस बुरी तरह से विगाडे हुये हैं।

बहुत थोड़ी अवस्था में ब्याह हो जाने तथा जल्दी ही दो तीन लडके हो जाने से और उसपर भी कुछ विशेष आय आपकी न होने से घरवालों ने इनकी स्त्री और लडकों को दुख देना और स्वयं उनका भी अपमान करना शुरू किया। इससे इन्हें लावार हो कर पैत्रिक घर छोडना पडा। इनको इस बात का जन्म भर अत्यन्त दुःख था कि घर वालों ने ब्याह कर इन को जकड तो दिया पर उसके बाद फिर इनकी कुछ सुध न ली, प्रत्युत इन 'पर बडे बडे' अत्याचार वरपा किये। जिस समय ये पैत्रिक घर से अलग हुए सिया दो एक लोटे और निज के तथा बाल बच्चों के कपडे आदि के और कुछ भी इन के पास न था। येनकेन किसी तरह ये गृहस्थी चलाने लगे। भाग्यवश इन्हें इनकी संहर्षिणी इनके दुःख सुख में सच्ची साथ देने वाली मिली थी। ये और इनकी पत्नी दोनों कई वर्ष तक काफी आमदनी न होने से एक ही जून खा कर रहते थे पर अपने पुत्रों के मरण पोषण और शिक्षा में कसर न पडने

भट्ट जी में सस्कृत साहित्य का जो प्रेम था वह सब परिडत गदाधर जी की रूपा का फल था। सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता भी विशेष कर इन्हीं परिडत जी के सत्सङ्ग से उन्हें प्राप्त हुई। इनके पिता वा चाचा बड़े व्यवसायी थे जिससे 'लक्ष्मी' के तो ये अत्यन्त रूपापात्र थे, पर सार्थ हो सरस्वती देवी के कट्टर शत्रु थे और इसीलिए तथा इनकी सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता देख ये बहुत ही गये बीते हुआ में समझे जाने लगे। समाज और विशेषकर घरवाले इन्हें "किरिस्तान" "विधर्मों" आदि शब्दों से अपमान करने लगे। अभाग्यवश धिनौनी हिन्दू प्रथा के अनुसार इनका विवाह बहुत ही कम उम्र में हो गया था। मसल है "पर बीती कहें या अपनी बीती" तो ये अपनी ही बीती बातों के कारण वाल विवाह के कट्टर शत्रु थे। "हिन्दी प्रदीप" को कोई भी अङ्क ऐसा न मिलेगा जिसमें इस विषय पर जोर के साथ टीका टिप्पणी न की गई हो। वाल विवाह के विषय में आप एक जगह लिखते हैं —

"धर्मशास्त्र के किसी एकसाली ग्रन्थ में 'वाल विवाह धर्म नहीं लिखा है, प्रत्युत महा अधर्म और अन्याय अलवत्ता निश्चय किया गया है। कन्या को अलवत्ता योग्य घर के साथ विवाह देना कहा गया है, सो तभी जब वह विवाह के योग्य हो और पुत्र का विवाह करना पिता का धर्म कहीं नहीं कहा गया, किन्तु उचित गुण और विद्या उपार्जन के उपरान्त अपने मन से यदि उसकी रुचि हो तो वह विवाह करके गृहस्थी के बंधन में पड़े नहीं तो स्वच्छन्द रहकर वह लोक परलोक के बड़े बड़े कामों में तत्पर हो।"

वास्तव में यह कुरीति समाज में इतने जोर से प्रचलित है कि बड़े बड़े देश की उन्नति का बीड़ा उठानेवाले Public में तो

बड़े जोर के साथ इसका विरोध करते हैं पर घर में अत्यन्त स्वार्थ में मग्न हो इस कुरीति के पोषक हैं। घर में यदि कोई लड़की या लड़का है तो यस व्याह देना ही सिद्ध, योग्य प्र वा कन्या है या नहीं इसका कुछ विचार नहीं, मानो उसे ब्याह जीवन के एक बड़े भारी कार्य से मुक्त हो जाना है। घर में एक कोई बड़ी भारी गमी हो गई है मुर्दा पडा हुआ है, पर नहीं, जयतक कि व्याह से छुट्टी न पा लें रोने, धोने, रज, गम का काम मुलतवी रखेंगे। शोक ! जो विवाह का प्रश्न मनुष्य के जीवन में एक बड़ा भारी प्रश्न है, जिसपर जीवन का बनना या बिगडना निर्भर है उसी प्रथा को हमारे हिन्दू भाई केवल अपने स्वार्थ के लिये किस बुरी तरह से यिगाडे हुये हैं।

बहुत थोड़ी अवस्था में व्याह हो जाने तथा जल्दी ही दो तीन लडके हो जाने से और उसपर भी कुछ विशेष आय आपकी न होने से घरवालों ने इनकी स्त्री और लडकों को दुख देना और स्वयं उनका भी अपमान करना शुरू किया। इससे इन्हें लाचार हो कर पैत्रिक घर छोडना पडा। इनको इस बात का जन्म भर अत्यन्त दु ख था कि घर वालों ने ब्याह कर इन को जकड तो दिया पर उसके बाद फिर इनकी कुछ सुध न ली, प्रत्युत इन पर बड़े बड़े अत्याचार घरपा किये। जिस समय ये पैत्रिक घर से अलग हुए सिया दो एक लोटे और निज के तथा बाल बच्चों के कपडे आदि के और कुछ भी इन के पास न था। ये न केन किसी तरह ये गृहस्थी चलाने लगे। भाग्यवश इन्हें इनकी सहधर्मिणी इनके दुख सुख में सच्ची साथ देने वाली मिली थीं। ये और इनकी पत्नी दौनों कई वर्ष तक काफी आमदनी न होने से एक ही जून खा कर रहते थे पर अपने पुत्रों के मरण पोषण और शिक्षा में कसर न पडने

देते थे। इधर इनके घर वाले लाम्बों की सम्पत्ति के मालिक बने हुये गुलछर्रे उडात थे और रगड़ी भडुओं के घर भरते थे। भट्ट जी को यावज्जीवन आर्थिक लेश बना रहा, ऐसा कमी भी न हुआ कि इनके पास सो दो सौ रुपया नकद रहता।

घर से अलग हो अब इन्हें रुपये पैदा करने की फिक्र हुई। व्यापार करने की इच्छा से ये कलकत्ते चले गये और वहा स थोड़े रुपये उधार ले Stationary तथा सोदागरी बना ली कर अपने प्रेमो मित्रों में जो बड़े बड़े वकील तथा रईस थे उन्हीं में बीच बँचते। इस तरह से हर छठे मास आपका दौरा कलकत्ते का होता और वहा से जो नई नई फैशन की चीजें होतीं उन्हें लाकर ये लोगों के बीच बेचते।

स्थानीय City Anglo Vernacular School के—जो शिवराखन स्कूल के नाम से प्रसिद्ध है—सस्थापक प० शिव रागन शुक्ल इनके सच्चे हितैषियों में से थे। आपने भट्ट जी से उस स्कूल में हेड पण्डित का काम करने के लिये कहा। अपने मित्रों के बहुत कहने सुनने पर ये इस स्कूल के Head Pandit हुये। इसमें कुछ साल काम करने के अनन्तर फिर कायस्थ पाठशाला के Head Pandit हुये और बाद को जब यह कालेज हुआ तो इसमें Sanskrit के Professor नियुक्त हुये। इन पदों पर प्राय आप २० साल तक काम करते रहे। बाद को किसी कारणवश उन्हें इस पद को छोड़ना पडा और काठाकाकर से निकलने वाले "सम्राट", नामक पत्र के सम्पादक हुये। लगभग छे मास तक वहा आप रहे होंगे कि बा० श्यामसुन्दर दास जी ने ना० प्र० सभा से प्रकाशित "शब्द सागर"

के सम्पादन के कार्य के लिये बुला लिया। साल भर यहा कार्य करने के बाद धारू श्यामसुन्दर दाम जी—जिनकी देख रेख में यह काम होता था—जम्बू गये तो कोप विभाग भी जम्बू गया। इससे डाको भी जम्बू जाना पडा। छै मास घहा रहे होंगे कि यहा की काठ की सीढ़ी से पैर फिसल जाने पर आप कूले के बल गिरे जिससे फूला उखड गया। घृद्ध तो आप ये ही गिरने मे आप बिलकुल अशक्त हो गये थे। साल भर तक आप खाट पर पडे रहे। बाद को ये बैसाखी के सहारे चलने फिरने लगे और कुछ मास काम करने पर घहा से लौट आये और चैत सुदी ६ सवत १६७१ रामनौमी के दिन यमुना स्नान करने गये, वहाँ से उनको ज्वर आया। इसी ज्वर में ४ मास तक पडे रहने के बाद ता० २० जूलाई को सध्या समय आपका परलोकवास हुआ।

जन्म भर आपका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा था सिवा धाम्र, के—जिसके साथ इन्होंने बहुत ही अत्याचार किया था—और सब अङ्ग आपके बहुत ही दृष्ट पुष्ट थे। प्राणायाम कर जिस समय आप उठते थे आपका चेहरा सुख दम दम करता था। साथ से इन्होंने येहइ काम लिया था यहा तक कि १० या १२ बजे रात तक ये लिगते घ पढते रह जाते थे। इसने एक आख खोलवाने से जाती रही केवल एकही आख थोड़ी थोड़ी छुगछुगा रही थी।

हिन्दी और हिन्दीप्रदीप से सम्बन्ध ।

विद्यार्थी की दशा में—जब काशी में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की अमर लेखनी अमृत का संजीवन स्रोत बहा रही थी और कवि-वचन-सुधा, काशी पत्रिका, बिहार बन्धु आदि पत्र प्रका

शित हो रहे थे—आपका प्रेम हिन्दी की ओर गया और सबसे प्रथम आपका एक हास्यपूर्ण लेख "कलिराज की सभा" कवि वचन सुधा में छपने के लिए गया जिसे भारतेन्दुजी ने बहुत ही पसन्द किया। इसके अनन्तर "रेल का विकट खेल" "स्वर्ग में सबजेकृ कमेटी" इत्यादि इनके कई लेख प्रकाशित हुये। उसी समय प्रयाग में कालेज के थोड़े से विद्यार्थियों ने "हिन्दी वद्विनी सभा" स्थापित की। सयोगवश उसी समय भारतेन्दु बाबू हरि अन्द्र किसी कार्यवश प्रयाग आये। ऐसे समय इसी सभा का एक अधिवेशन होने वाला था। भारतेन्दु जी को लोगों ने इस सभा के इस अधिवेशन में सभापति का आसन ग्रहण करने को कहा और इसकी सूचना बाबू साहब को केवल तीन व चार घंटे पहिले दी गई। इसी समय आप मुशी हनुमान प्रसाद वकील के मकान पर बैठे शतरज खेल रहे थे और मनोरंजक बातें कर रहे थे बस आप इसी सभा के लिए पद्य में वक्तव्य रचने लगे। भारतेन्दु बाबू शतरज अलग खेलते जाते थे, मनोरंजक बातें अलग कहते जाते थे और अपनी वक्तव्यता को पद्य व अलग लिखवाते जाते थे। लगभग १०० दोहे आपने रचे। यह लेखकर सब से प्रथम "हिन्दी प्रदीप" की पहिली जिल्द के १७ से ३२ अंक में प्रकाशित हो चुका है। भारतेन्दु बाबूजी का यह पद्यबद्ध लेखकर जिसे उन्होंने कई काम एक साथ करते हुए लिखा उनकी बुद्धि की प्रतिभा या स्फूर्ति को प्रगट करता है। बाबू साहब भट्ट जी के लेख से इतने प्रसन्न हुये थे कि यह आकर आपसे बहुत ही प्रेम से मिले और यह आशीर्वाद सा दिया कि "हिन्दी में मेरे बाद तुम्हारी ही लेखनी चमकेगी"। सभा के इसी अधिवेशन में बाबू साहब की प्रेरणा से सभा की ओर से एक पत्र निकालना निश्चय हुआ और बाबू साहब

ही के कहने से भट्ट जी ने उसके सम्पादन का भार अपने ऊपर लिया । पत्र का नाम "हिन्दीप्रदीप" और उसका माटो "शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट है आनन्द भरे

बचि दुसह दुरजन वायु सौ मणि दीप सम धिर नहिं टरै ।
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरे

"हिन्दी प्रदीप" प्रकाशि मूर्खतादि भारत तम हरै ॥"

बाबू ही साहय का रचा हुआ है । यह मासिक पत्र भाद्र पद सवत १९३४ से निकलने लगा । इस "प्रदीप" में प्राचीन कवियों के जीवन-चरित्र, श्रीमद्भागवत, चाराही सहिता, गीता और सप्तशती आदि प्राचीन पुस्तकों की समालोचनायें, प्राचीन देश, नगर, नदी, पर्वत आदि के वर्णन तथा अन्य बहुत से उत्तमोत्तम लेख प्रकाशित हुए हैं । हसी, दिल्लीगी, चोज आदि के लेख तो इसमें भरे पडे हैं । इस "प्रदीप" के पुराने अङ्कों में "परसन" नाम के एक लेखक के बहुत से लेख बहुत ही हास्य-पूर्ण होते थे । परसन जाति के कलवार थे, पर भट्टजी उसे बहुत मानते थे । उसकी मृत्यु पर भट्टजी बहुत ही दुखी हुये मानो उनका कोई आत्मीय उठ गया हो । "हिन्दी प्रदीप" के लेख नये होते थे किसी की छाया अथवा अनुवाद नहीं । भट्टजी जो कुछ लिखते थे अपने दिमाग से लिखते थे । उनमें न्याय प्रियता का गुण सब से बढ़कर था । अपनी समझ के अनुसार जो उचित और न्याय्य होता था वही आप लिखते थे । भट्टजी बहुत ही सतत प्रकृति थे कभी किसी सम्प्रदाय या मत के फायल न थे, पर हा जिस बात से देश वा जाति के उन्नत होने की बातें देखते वही उनका मत हो जाना और उन्ही को धर्म समझने । यही बातें इनके "हिन्दी प्रदीप" के लपों से पाई जाती हैं ।

“हिन्दी प्रदीप” ही भट्टजी की जीवनी का सर्वस्व है वही उनका चरित्र का उज्ज्वल चित्र अपने लेख लेख में, पृष्ठ पृष्ठ में, पाठ पंक्ति में दिखाता है। भट्टजी जिस दृष्टि से वर्तमान काल के कुत्सित मनुष्यों के दुश्चरित्रों और कुकार्यों को देखते थे उसको बेधडक कह देते थे। उनकी भाषा उन्हीं की अपनी भाषा है। उस भाषा की व्यङ्गमयी छटा उन्हीं की सम्पत्ति है। जिस बल से निर्धनी मनुष्य भी धनशालियों का पूज्य है, भट्टजी का चरित्र बल की वह तेजस्विता, वह सत्यप्रियता, वह निष्पापता, वह धैर्यशीलता, वह मधुरभाषिता, वह विनिमय नम्रता, वह क्षमाशीलता ३३ वर्ष के हिन्दी प्रदीप में चमक रही है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भट्टजी सदा उन घाड़े से प्रतिभाशाली लेखकों में गिने जायेंगे जिन्होंने आधुनिक हिन्दी भाषा के गद्य की नींव डाली है। जिस समय भट्टजी ने हिन्दी लिखना शुरू किया उस समय दो प्रकार की हिन्दी लिखने की प्रणाली प्रचलित थी। एक के आचर्य वा० हरिश्चन्द्र और दूसरे के राजा शिवप्रसाद थे। भट्टजी अपने को हरिश्चन्द्र का अनुयायी कहते थे। भट्टजी से वाचू हरिश्चन्द्र की रूप पटती थी। और समान शीतस्वभाव और हिन्दी लिखने की प्रणाली में समानता होने के कारण परिचित प्रतापनारायण मिश्र और परिचित राधाचरण गोस्वामी से भी भट्टजी की विशेष बनती थी। परिचित महावीरप्रसाद द्विवेदी, वाचू बालमुकुन्द गुप्त और परिचित शिवनाथ मिश्र से भी भट्टजी की बड़ी मित्रता थी।

भट्ट जी की हिन्दी ।

भट्टजी की हिन्दी में भट्टजी की छाप लगी हुई है। उनकी भाषा उन्हीं की अपनी भाषा है। भट्टजी की भाषा से एक अनोखा रस टपकाता है, जो अन्य लेखकों की भाषा में मिलना

मुश्किल है। भट्टजी अकारण सस्कृत के शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे और न उर्दू फारसी के शब्दों को अपनी भाषा से छुन छुन कर बलगत करते थे।

भट्टजी जिस विषय पर लिखते थे उसके अनुसार भाषा भी वैसीही लिखते थे। यदि वे हास्य या ठठोल लिखत थे तो भाषा भी वैसीही हास्यमय और ठठोलसे भरी रहती थी, यदि किसी पर कटाक्ष करते थे, तो भाषा भी व्यङ्ग्यपूर्ण रहती थी, यदि शृङ्गार रस पर लिखते थे तो भाषा भी शृङ्गारमयी रहती थी और यदि किसी गम्भीर विषय पर लिखते तो भाषा भी गम्भीर और साहित्य के गुणों से पूर्ण रहती थी। यहाँ पर हम भट्टजी की भाषा के कुछ उदाहरण पाठकों के सामने रखते हैं।

हास्य और व्यङ्ग्यपूर्ण भाषा का नमूना,—“नाफ निगोड़ी भी एक मुठी-बन्ना है। इस मिट्टा के पुतले को साढ़े तीन पीता की नाक क्यों गढ़ी गई ? पर उस बड़े प्रालिन की नासमझी को किससे कहने, जाय जिसने आदमी के तन में एक एसी नाक चीज़ लगा दी जिसके कट जाने की पग पग में दर समाई रहती है और जिसकी हिकाजत के लिए आदमी को न जानिये क्या क्या भुगतमान भुगतना पडता है। मुमाइश और जाहिरदारी की लिपलगाह इस नाक का क्या कह जिसकी रखवाली में राव से रक तक सभी दैगन हैं। न जानिय इस नाक में क्या जादू है कि इनके बढ़ाने की कोशिश में सब रहते हैं। इसकी बढ़ी हुई वहइ इजत को घटा कर एन श्रौसत दरजे पर खाने वाला कहीं एक भी न पाया गया। जिसने इस नाक की लाज को तिखाअलि दे दिया उसकी बराबर सुखी दूसरा कोई शोही नहीं सकता”।

“हरवर भी क्या ही ठठोल है। लोग कहेंगे इसे कुछ अफ्रगान होगया है या इसे बीसवीं शताब्दी के फ्रैशन के अनुसार नास्तिक बाग का दौसला

चराया है जो उस अगम, अपार, अखोरणीयान् महतोमहीयान् के शान में भी एसी बेअदबी और टिठाई के साथ कुम्भ का कलमा पढ़ रहा है। जो हो पर मुझे तो बहुत से अस्तव्यस्त कारप्राने देख चुक़ ऐसी ही जी में भासती है कि वह कुम्भकरण का जेठा भाई धनने की हवस धुम्का रहा है, या यदि यही सब अस्तव्यस्त कारप्राने ईश्वरता के निदर्शन हैं तो वह पर घोर नोंद में सो रहा है, या आगता है तो कोई बड़ा ही ठठोव दिङ्गीबान्त मसफ़रा है, नहीं तो बेक्रिक और असावधान होने में तो कोई शक ही नहीं है। जिस कसौटी, परिभाषा और सूत्र के अनुसार हम भोग आपस में एक दूसरे को जाचते और परचते हैं, वही परिभाषा यदि वहां भी खगा कर बसे परचें तो उनके ईश्वरता की सब कलईं सुज जाँच और दुनिया के हालात देख अवरय चित्त में यही समाया कि यह कोई बड़ा ही अनोखा खेबगाड़ी है” ।

शृङ्गारपूर्ण भाषा का उदाहरण — “दाभिनी से दमकते हुए इसके (हृमा के) एक एक सुदौब, साचे के टले, अगों पर सुदरापा बरस रहा था, यह अपने घने केशगालों में अलकावली की गूथन तथा विकसित पुण्डरीक नेत्रों से वर्षा और शरत् ऋतुओं का अनुहार कर रही था।

पद्मराग समान लाल और पतने होंठ, गोल दुधूरी, ऊँचा चौड़ा माथा, कुंद की कली से दात, सीपी और बराबर उतार चड़ावदार सुगा का टोंट सी नासिका, गोल कपोल, कटीले और रंगीले आँखें, रेशम के लच्छे से सिर के बाल, सब मिल इसके चेहर पर एक अनोखो छविदरसा रह थे”

“सौ अमान एर सुमान”

अब एक उदाहरण गम्भीर और उच्चभाव ना लोजिय —

“साहित्य जनसमूह के हृदय का विशास है। किसी देश का साहित्य वस देश के मनुष्यों के हृदय का आर्शरूप है। जो जाति जिस भाव से परिपूर्ण या परिष्कृत रहता है वह सबउत्कृष्ट भाव वस समय के साहित्य की समाखीचना से अच्छी तरह भरत हो सकते हैं। मनुष्य का मन जब शोक

मनुष्य, वीथ से उदात्त या निम्नी प्रकार की चिन्ता से होचिता रहता है उस उसकी मुखच्छवि समसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है, उस समय बगाने कण्ठ में जा घ्वनि निकलना है वह भी या तो फुटमी दोल समान धमुरी, घेनाल, बलय या करुणापूर्ण, गद्गद और विवृतस्वरसंयुक्त होती है। वही जब चित्त आनन्द की खरी से उद्धेलित हो नृत्य करता है और सुगम की परम्परा में मग्न रहता है उस समय मुग्न विकसित कमल सा, पशुहित निगम मानो हृद्यता सा, और अगम अगम चुन्ती और चाखाकी से फिरहरी से परना करते हैं, कण्ठघ्वनि भी तब वसन्तमदमत्त कोकिला के कण्ठमय मे भा अधिन मीठी और मोहावनी मन को भाती है। मनुष्य के मन्वथ में इस अनुलक्षणीय प्राकृतिक नियम का देशा के साहित्य भी अनुसरण करते हैं। जिनमें कभी को कोरूपण भयङ्कर गर्जन, कभी को प्रेम का उच्छ्वास, कभी को शोक और परितापजनित हृदयनिदारी करुणानिबन्धन, कभी को वीरतागर्व से बाह्यबल के दर्प में भरा हुआ सिहनाद, कभी को भक्ति के उन्मेष से चित्त का द्रवता का परिणाम अभुपात आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों का उद्गार देखा जाता है। इसलिए साहित्य यदि जनसमूह (Nation) के चित्त का चित्रपट कहा जाय तो सगत है।

इतने उदाहरणों से पाठकों को भट्टजी की भाषा के रसास्वादन का नमूना मिल गया होगा।

यह प्रस्तुत ग्रन्थ भट्टजी की लेखनी का एक बहुत अच्छा नमूना है। इस प्रबन्ध कल्पना में उपन्यास की कोई विशेष बातें नहीं हैं। किस्तापन या वन्दिश इसकी बहुत टकसाली नहीं है। इस पुस्तक की मुख्य विशेषता यह है कि सस्कृत के वाण और दण्डी के समान उरमा आदि अलंकारों से भरी हुई लच्छेदार भाषा का लालित्य, तथा प्राकृतिक वर्णन इसमें भरे पडे हैं। और इसमें के पात्रों का चरित्र चित्रण जैसा कि समाज में रह कर भट्टजी ने देखा या अनुभव

सौ अज्ञान और एक सुज्ञान ।

उपन्यास ।

पहला प्रस्ताव ।

खोटे को संग साथ-हे मन तजो अद्भार ज्यों ।
तातो जारै हाँथ-शीतल हू कारो करै ।

बरसात का अन्त है । दुर्व्यसनी के 'धन' समान, मेघ आकाश में सिमिट सिमिट लोप होने लगे हैं । शरत् का आरम्भ हो गया । शीत अपना सामान धीरे २ इकट्ठा करने लगी । कुआर का महीना है । उजाली रात है । ग्यारह बजे का समय है । सन्नहटा छाया हुआ है मानो-प्रकृति देवी दिन भर की दौड़ धूप के उपरान्त थकी थकाई विश्राम के लिय लुट्टी लिया चाहती है । चन्द्रमा सोलहो कला से पूर्ण होने में कुछ पेसा ही नाममात्र का अन्तर रखता हुआ अपनी प्रियसी निशा की मुखच्छवि पर निहाल हो मानो हँस साँ रहा है, जिसकी सब ओर उिटकी हुई चादनी सम विषम भू भाग को एक आकार दरसाती हुई चक्रवर्ती राजा की आज्ञा समान सर्वत्र व्याप रही है, मानो वितान रूप नीले आकाश शामियाने के नीचे सुफेद फर्श बिछा दिया गया हो । मालूम होता है शरत् की सहायता पाय धरती आकाश के साथ हीट

लगाये हुये हैं। वहा निर्मल आकाश में मोती से चमकने
 हुये तार अपने स्वामी निशानाथ के प्रसन्न करने को निशावधूरी
 के लिये उपहार बन रहे हैं; यहा फन्या के सूर्य के प्रचण्ड
 आतप में कीचड पानी सूख जाने से स्वच्छ हो, छिटकी हुई
 चादनी के मिस हंसती सी धरती, फूले हुये कटहार, गुलनार,
 फुई, कुन्द आदि भाति २ के फूलों का गहना सजे, उसी निशा
 नई दुलहिन को मुह देखाई देने को प्रस्तुत है। वहा एक
 चन्द्रमा है यहा ठौर २ नवयुवतियों के अनेक वादसे मुतड़े की
 चादनी कामियों के मनमें मनसिज का विकाश कर रही है।
 ऐसे समय अरशी घोड़े पर सवार एक आदमी देख पडा,
 भेष इसका सिपाहियाना था; उमर में यद्यपि ५० के ऊपर
 डांक गया था पर डीलडौल से ४० के भीतर मालूम होता था।
 बाल इसके दो एक कहीं २ पर एक गये थे सही किंतु
 उतने से यह किसी को नहीं बोध होता था कि यह तरुनार
 से डुलक चला है। नई उमर का जोश, साहस, हिम्मत
 और दितोरी में यह चढती उमर चारो जवानों के भी आगे
 बढा था, और यही सब बातें मानी साखी भर रही थीं कि
 कचलपटी और छिछोरपन से यह फहा तक दूर हटा हुआ
 है। पढा लिखा यह कुछ न था, पर, जैसी कुछ मुस्तेदी इस
 में देखी जाती थी उससे स्वामिभक्ति इसके चेहरे से झलक
 रही थी। चौड़ी छाती ओर बढा फी, मजबूती से यह सब
 मालूम होता था, और डील का न बहुत नाटा न बहुत कम्बा
 था। कुछ ऊधता गलसाना सा कागज का एक पुलिन्दा दाध
 में लिये लम्बे चौड़े पके मकार के फाटक पर आकर यह
 खदखदागे लगा। दासी ने आय कियाड सोल कहा "बाबू
 सोचन है।" इसने पहा, "बड़ा ज़रूरी कागज है सोकर

उठें तो यह पुलिन्दा उन्हें दे देना" । पुलिन्दा दासी के हाथ में पकड़ाय आप चला दिया । दासी ने किवाड़ बन्द कर लिया और भीतर चली गई ।

दूसरा प्रस्ताव ।

नर की अरु नलनीर की गति एकै कर जाय ।
जे तो नीचा है चलै ते तो ऊचा होय ॥

हिन्दुस्तान में अवध का प्रान्त भी सदा से प्रसिद्ध होता आया है । पृथ्वी का यह सम भूभाग अनेक छोटी बड़ी नदियों से सिंचा हुआ उपज, और पैदावारी में और प्रान्तों की अपेक्षा आगे बढ़ा हुआ है । यद्यपि बंगाल, विहार, तिरहुत आदि कई एक और सूबे भी जलप्राय देश होने से अधिक उपजाऊ हैं किन्तु वैसे पुष्ट धान्य जैसे अवध में उपजते हैं और प्रान्तों में फहा ! उन २ प्रान्तों की उपज शारदीय अर्थात् कुआरी और अगहनी मात्र है, धरती के अत्यन्त निर्बल और अधिक जलमय होने से घासन्ती अर्थात् चैती फसल बड़ा बिलकुल या बहुत कम होती है, और अगहनी में भी ज्वार बाजरा आदि कई एक प्रकार के अन्न की खेती का तो नाम भी नहीं है । और ठीर जब कि जेठ वैशाख की तपन और लूह में भुत्तस बर कहीं हरियाली का लेश भी नहीं रहने पाता यहा तब भी हरित तृण आच्छादित पृथ्वी मरकतमयीसी प्रतीत होती है । अवध इक्ष्वाकु और रामचन्द्र के समय से धीर यादुरे सत्रियों का उत्पत्ति स्थान प्रसिद्ध है । सक्ती फौज में अब भी बैसवारे सिपाहियों का दर्जा श्रेष्ठ समझा जाता है । पंजाब

थी, जाहिरदारी को यह दिल से नापसन्द करता था। जिस किसी को धामद से जियादह खर्च करने देखता उसे यह निरा बर्देर्मति और दिवालिया मानता था और न कमी पैसे का अपने किसी काम में विश्वास करता था।

इससे यह मत समझो कि यह महार्टच यज्ञ-सूम था, काम पडने पर यह बंदरेग लापों लुटा, देता था और बेजा पक-पैसा भी उठ गया हो तो उसके लिये दिनभर पड़ता था। जैसा कहा है।

अथ काकिणीमप्यपथप्रपन्नां

समुदुरेत्तिष्कसहस्रतुल्याम् ।

कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्त

स्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मी ।

पुराह में जाते हुये एक फौडी की बचत को जो हजार मुद्रा समान समझना है यह राजसिंह उचित समय से हजारों खर्च कर डाले तो भी लक्ष्मी उसे नहीं त्यागती।

दिन-रात सदा एकही काम में लगे रहना इसे बहुत बुरा लगता था। सबेरे से साभू तक पाली तेल और पानी से बह चिकनाते हुये फेशन और नजाकत के पीछे जुनखा बन केवल अपने आराम और भोगविलास की फिकिर के सियाप और बुद्धि न करना इसे बिल्कुल नापसन्द था। न हरदम पाली मुमिरनी फेरना ही उसे भला लगता था। न आठो पहर अर्धपिशाच बन केवल रुपयाही रुपया, अपने जीवन का साराश मान बैठा था। बरन समय से धर्म, अर्थ, काम तीनों

को पारी पारी सेंधता था। व्यासदेव के इस उपदेश को अपने लिये इसने शिक्षागुरु मान रखा था—“धर्मार्थकाम सुममेव सेव्या यस्त्वेकसेव्यो स नरो जघन्य” — बुद्धिमान् और सभाचतुर ऐसा था कि ज़रा से इशारे में घात के मर्म को पकड़ लेता था। केवल एक ही में नितान्त आशक्ति न रखे धर्म, अर्थ, काम तीनों में एक सी निपुणता रखने से कभी किसी चालाक के जुल में यह नहीं आता था—ससार के सब काम करता था, पर जितेन्द्री ऐसा था कि कंघी तबियत वालों की भाँति लिस किसी में न होता था।

श्रुत्वा दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नर
यो न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रिय

व्योपार में इसकी बुद्धि की स्फूर्ति उस समय के रोज गारियों में एक उदाहरण हो गई थी, नगर २ इसकी कोठी आदत और दूराने इतनी अधिक थी कि उनका इन्तिजाम इसी की अथाह बुद्धि का काम था। धर्म में निष्ठा, ब्राह्मण में भक्ति, शक्ति रहते भी क्षमा इत्यादि ऐसे लोकोत्तर गुण इसमें थे कि उसकी उपमा किसी दूसरे पुरुष में ढूँढ़ने से भी मिलना दुर्घट है। अस्तु लड़के इसके कई हुये किन्तु बहुत कुछ उपाय के उपरान्त केवल एक ही जीता बचा। पिता के उसमें एक भी गुण न हुये। इसकी अत्यन्त सिधार्ह और सादापन देख लोग इसे मोन्दूदास कहते थे, पर नाम इसका रूपचन्द था। आशा होती थी कदाचित् अपनी उमर पर आने से रूपचन्द भी पिता के समान गुणागर होते, किन्तु ईश्वर का कर्तब कुछ कहा नहीं जा सकता, २५ वर्ष की थोड़ी ही उमर में दो पुत्र,

एक कन्या छोड़ यह सुरधाम को सिधार गया। सेठ हीराच को यद्यपि इसका बड़ा सदमा पहुँचा, किन्तु उस दुःख अपने धैर्यगुण से दबाय उठा, जो पीशोही को निज पुत्र सम पालन पोषण और पढ़ाने लिखाने लगा, और इतनी धनसर्पा पाकर जैसा विनीत भाव और नवन्ता अपने में थी वैसे लड़को में भी हो जाने का प्रयत्न करने लगा।

तीसरा प्रस्ताव ।

गुणै हि सर्वत्र पद निधीयते ।

उसी नगर में एक महापुरुष विद्वान् रहते थे। दूर २ देश के छात्र और विद्यार्थी इनके स्थान पर पढनेके लिये टिके रहते थे। नाम इनका शिरोमणि मिश्र था, गुण में भी ये वैसे ही विद्वन्मण्डलीमण्डनशिरोमणिके समान थे। अध्यापकी के काम में दूर २ तक कालादारी के नामसे प्रसिद्ध थे, अर्थात् काला अक्षरमात्र शास्त्र का कैसा ही दुरूह और कठिन कोई ग्रन्थ होता उसे ये पढ़ा देते थे। अनुपपन्न गरीब विद्यार्थियों को जिन्हें यह परिश्रम पर सर्पथा असमर्थ देखते थे यथाशक्ति उनके गुजरानके लायक छात्रवृत्ति भी देते थे। सेठ जी इनको बहुत मानते थे, इस लिये कितनों को तो शिरोमणिजी अपने पास से देते थे और कितनों को सेठ से दिलाते। सेठ इनका बड़ा भक्त था और इन्हें मूर्तिमान् प्रत्यक्ष देवता समझ एक बार दिन रात भर में इनका दर्शन अवश्य आय कर जाता था। मिश्र जी जैसे श्रुताध्ययनसम्पन्न वैसेही सद्बृत्त और सदाचारवान् थे। "न केवलया विद्यया तपसा चापि पात्रता" स्तो

इसमें न केवल विद्या ही किन्तु तपस्या भी पूरी थी। स्वभाव के अत्यन्त गमीर, देखने में साक्षात् गणेश की मूर्ति मालूम होते थे। इनका चौड़ा लिलार और-दमकती हुई मुँह की घुति वामिनि की दमक के समान देखने वाले के नेत्र को मानो चकाचौंधी सी उपजाती थी। इनकी सत्पात्रता का कहना ही क्या। याज्ञवल्क्य लिखते हैं—

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं विद्याभ्यासेन जीर्यति
कुलान्युद्धरते तस्य दश पूर्वाणि दशापराणि

जिसका खाया हुआ अन्न पढ़ने पढ़ाने की मेहनत से पचता है वह अपने अगले पिछले दस ? पुरखों को तार देता है। सो अध्यापकी में तो ये यद्वा तक परिश्रम करते थे कि चार बजे के तड़के से आठ बजे रात तक निरन्तर पढ़ाया करते, केवल मध्याह्न में तीन चार घंटे विश्राम लेते थे। सवेरे से दश बजे तक भाष्य, वेदान्त, पातञ्जल, आदि आर्य ग्रन्थ का पाठ होता था, दूसरी जून-काव्य कोष व्याकरण गणित ज्योतिष इत्यादि का। सिवाय इसके जिस जून जो कोई जो कुछ पढ़ने आता था वह उसे विमुख नहीं फेरते थे, किन्तु केवल इतना विचार अवश्य रहता था कि असत्शास्त्र या निरीश्वरवाद वाले ग्रन्थ जैसा कपिल का दर्शन पहिली जून नहीं पढ़ाते थे प्रातः काल के समय जब त्रिपुरण्ड और रुद्राक्ष धारण किये कोडियों विद्यार्थी अपना २ आसन विद्याय सन्धा-लेने को इनकी गद्दी के चारों ओर घेर कर बैठ-जाते थे उस समय यह मालूम होता था, मानो ऋषि मडली के बीच पद्मासन पर ब्रह्मा विराजमान हों। उस समय देखनेवाले के चित्त में यही

भासती थी कि धन्य है इन विद्यार्थियों को जो प्रतिदिन प्रा-
क्षण इनके दरस परस से अपना जन्म सफल करते हैं। स-
खती भी धन्य है जो इनके मुख कमल के संपर्क का सुखानु-
भरती हुई ऐसे महात्मा के प्रसन्न, गभीर, और विमल म-
मानस में राजहंसी के समान वास करती है। जहाँ से का-
कोप, अलङ्कार, तर्क आदि अनेक विद्या निम्न २ नदी के सम-
प्रवाह रूप में बहती, छात्रमण्डली का कायिक और मानसि-
दोनों पाप धोये देती हैं। न केवल विद्याही के कारण इनकी
कोई प्रशंसा करते थे और इनके बड़े मोर्तिकिद् हो गये
किन्तु अनेक असाधारण लोकोत्तर गुणोंसे भी। शान्ति व
क्षमा के यह आधार थे, तृष्णालता-गहन-यन के का-
को मानो कुठार थे, अज्ञानतिमिर के हटाने को सहस्रांशु
दृष्ट और दुराग्रह आदि महाक्रूरग्रह के अस्ताचल थे, उद्ग-
भाष के उदयगिरि थे, क्षमा और उपशम महारत्न के मूल
धर्म थी ध्यजा, सत्पथ के दिखलाने वाले, शील के सा-
र्वाजन्य सुमन के कुसुमाकर थे। कि बहूना हीराचन्द्र के
परिणत जी सर्वस्वही थे। उस प्रान्त के छोटे बड़े सभी त
सुखेदार इन्हें मानते थे और प्रतिमास असख्य धन इनकी
भेज देते थे। परिणत जी उस धन में से केवल साधा-
भोजन और मोटा भौटा कपडा पहिन लेने के सिवाय सब
सब अपने पास पढ़नेवाले विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति में
कर देते थे। लडका वाला इनके कोई न था पर इस
का इनको कुछ सोच न था, उन विद्यार्थियों ही को अ-
पुत्र मानते थे। बरन पुत्र से अधिक प्रेम उनमें इनका
उन सयों में दूर देश का एक विद्यार्थी आकर थोडे दिने
यहा पढ़ने लगा, किस नगर या ग्राम का रहनेवाला यह

यह कुछ मालूम नहीं, पर पौली इसकी कुँछ २ माडघाटियों की सी थी। जो हो इसके शील स्वभाव और बुद्धि की तीक्ष्णता ने परिहित जी इसपर यहा तक रीझ गये कि इसे अपना पट्टशिष्य मानने लगे। और सब बातों में परिहित जी की अनुहार तो इसमें थी ही, किन्तु बालने में पट्ट और यर्यर होना यह एक बात इसमें विशेष पाई गई। परिहित जी अध्यापक बहुत अच्छे थे, किन्तु अत्यन्त शान्तशील होने के कारण शास्त्रार्थ करने में उतने प्रवीण न थे। इसमें दोनों बात होने से गुरु जी भी इसका विशेष आदर करने लगे। हीराचन्द्र जब परिहित जी के दर्शनों को आता था तो उसका चाकपाट्य और पैनी बुद्धि की तेजी देख सेठ प्रसन्न हो जाने थे और इसके ये गुण हीराचन्द्र के मन में जगह पाते गये। नाम इसका चन्द्रशेखर था किन्तु परिहित जी का यह अत्यन्त कृपापात्र था इससे ये इसे चन्द्र कहते थे। सेठ अपने बालकों के लिये ऐसा एक आदमी खोज रहा था जो उन्हें पढावे तो थोडा पर इधर उधर की चतुराई की बातें उन्हें सुनाये बहुत। चन्द्र में यह गुण देख उसी को सेठ ने अपने दोनों पौत्रों के पढाने के लिये नियत कर दिया।

चौथा प्रस्ताव ।

यौवनं, धनसंपत्तिः, प्रभुत्वमविवेकता ।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

धनाधिप राजराज कुबेर कासा असह्य धन और देवराज

इन्द्र के से अनुपम ऐश्वर्य के, स्वतन्त्र अधिकारी अपने दो पौत्रों को छोड़ सेठ हीराचन्द सुरधाम सिधार गये। सठ प्राणधनसमान प्यारे परिद्धत शिरोमणि ने भी, इसके वियोग की आग के दाह में आह भरते हुये अपने जीवन को मुलसाना अनुचित मान और सेठ, सर्राखे धर्मात्मा को वहा भी धर्मोपदेश से सनाथ रखने को इसका साथ दे दिया। राजा और बहादुर का सा सिर्फ दुलार में पुकारने का नहीं धरन् वाल्व में अपनी वेदन्तिहा विभव की निश्चय दिलानेवाली दुहरी मुहर के समान अपने दो पौत्रों का नाम सेठ ने ऋद्धिनाथ और निधिनाथ रक्खा था। उनमें ऋद्धिनाथ बड़ा था और निधिनाथ 'छोटा। करोड़ों का धन अपने अधिकार में पाय, अत्र इन दोनों के नाम की पूरी-२-सार्थकता हो गई। शीघ्र स्वभाव और आकृति में दोनों की ऐसी समता पाई जाती थी मानो वे हीराचन्द के सुकृतसागर की सीप के एकसी आभा वाले छोटे बड़े दो मोती हें, या उसके पुण्य की दो पताकायें हें, या वशवृद्धि करनेवाले बीजाङ्कुर न्याय के दो उदाहरण हें, या एक ही डठरी के दो गुलाब हें, या वसन्त ऋतु के चैत्र वैशाख दो महीने हें। साचे कैसे ढले, इन दोनों के एक २ अक्षर और रङ्ग रूप में यहा तक तुलना थी कि दाहिने गाल पर एक तिल जैसा बड़े के था ठीक वैसा ही एक तिल छोटे के गाल कपोल पर भी चन्द्रमा के गोलैफार मण्डल में अङ्क के समान शोभा दे रहा था। सामुद्रिकशास्त्र में लिखे हुये इनके अङ्ग प्रत्यङ्ग में ऐसे २ एक से लक्षणों को देख बोध होता था मानो वे दोनों जब गर्भ में थे तभी इनका शुभ अशुभ भागी परिणाम नियत कर विधना ने इन्हें पैदा किया था। न केवल इन दोनों के शरीर की सुघराहट और घनावट ही में समता थी

शीलस्वभाव, रगढा, धोलवाल, रहनसहन, सब इन
 दोनों का एकसा था। उमर इस समय बडे की चौदह और
 चिन्डे की बारह वर्ष की थी। कुछ दिनों तक ये दोनों बराबर
 सी क्रम पर चले गये जिस क्रम पर सेठ इन्हें रख गया था।
 चन्द्र नित्य इनके घर पढाने आता, कभी २ यही दोनों उसके
 घर जाते थे। चन्द्र इन्हें पढाता तो थोडा पर इधर उधर की
 चित्तुराई की बातें, जो इनकी कोमल-बुद्धि में सहज में
 समाय सकें और सोहावनी मालूम हो, बहुत सुनाया करता
 था, और ये भी-बडे शान्त और विनीत भाव से उसकी
 बात सुनते, और गुरु के समान इसका यथोचित आदर करते
 थे। चन्द्र की योग्यता और पारिडत्य का प्रकाश हम पहिले
 कर आये ह कि यह पण्डित जी का पट्टशिष्य था और उनके
 पढाये हुये विद्यार्थियों में सब से चढा बढा था, बल्कि शिरो-
 मणि महाराज के सब उत्तम गुण इसमें देखे गये, अन्तर
 केवल इतना ही पाया गया कि, स्वभाव का यह अत्यन्त तीक्ष्ण
 और क्रोधी था, लहोपत्तो और जाहिरदारी इसे आती ही न
 थी, बल्कि ऐसे लोगों पर, उसे जी से धिन थी। यह उन
 ब्राह्मण और पण्डितों में न था कि केवल दूसरों ही के उपदेश
 के लिये बहुत से ग्रन्थों का बोझ लादे हों पर काम में-पतिन
 महामन्द शूद्र से भी अधिक गये बीते हों। लोभ, कपट और
 अहंभार का कहीं सम्पर्क भी इसमें न था। स्वलाभसन्तोष,
 सिधार्थ और जीवमान की हितेच्छा की यह मूर्ति था।

वेप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसूहृत्तमान् ।
 निरहङ्कारिण शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत्

* मागे भगवत के इस श्लोकवाक्य आधार था
 उसकी चरितार्थता ऐसे ही ब्राह्मणों के विद्यमान रहने से
 रही है। अफसोस यदि समस्त ब्रह्मण्डली या उनमें से
 अधिकांश चन्द्र के समान उन २ सुनहणों से सुशोभि
 हांते तो इस नई रोशनी के जमाने में भी इनके बिना
 मुह खोलने को किसी की हिम्मत न पड सकती और
 ये सर्वथा पतित हो ऐसी गिरी दशा में आ जाते।
 अस्तु वे सब उत्तम गुण इसके लिये पेंगुण हो गये। सा
 के पढ़ने वाले ही इसके गुण गौरव को न सह इसकी खुशु
 में लग गये। यह किसे प्रगट नहीं है कि बापस की नाहि
 फाकी का बीज दूसरे की तरकी पर जलन ने ही हिन्दुस्तान
 का मुद्दत से कयाय कर रखा है। तब जिस जाति का चर
 है उसकी तो यह खास गुसोखियत सी होगई है। कहावत
 "नाऊ बाह्यन हाऊ जात देख गुराऊ"। सिरों की भेड कान
 के भाति ब्राह्मण ही जो हिन्दूजाति का सिरा और हिन्दुस्तान
 के सब कुछ हैं इस लक्षण के हुये तो औरों की कौन कहे। न
 इस बात को जान गया था कि लोग हमसे खार खाते
 और हमारी खुचर में लगे हुये हैं फिर भी अपना कर्तव्य का
 समझ उन दोनों वालकों को सिखाने और उन्हें ढंग प
 नदाने से यह विमुख न हुआ। इसने सोंचा कि हीराचन
 सरीखे सत्पात्र के घराने की प्रतिष्ठा और भलमनसाहत इन्हें
 दानों के सुधरने या कुढग होने से बचती या बिगडती है

* ऐसे ब्राह्मण जो स्वभाव तनुट हैं, साधु हैं, प्राणीमात्र क हि
 चाहनवाले हैं, अहंकार रहित हैं, शांत स्वभाव क हैं भगवान् बहते हैं।
 उन्हें बार बार सिर से प्रक्षाम करता ह।

हमारे सेठ जी का एहसान इस पर इतना अधिक था कि उसे पादकर यद्यपि यह स्वभाव का, बहुत सच्चा और सरा था तौमी इस काम से अलग न हुआ।

अब चर्प ही दो घण्टे उपरान्त तबनाई की मलक इन दोनों पर आने लगी, नई नई तरह सूझने लगी, नई उमर का तफाजा शुरू हो गया, अमीरो के अहहपन ने आकर जब जगह किया तो, उसी तरह के सब सामान इकट्ठे करने की फिरक हुई। एकाएक अज्ञान तिमिर के छा आने पर, चान्दनी समान चन्दू के उपदेश को प्रकाश पाने का अर्थ सर ही न रहा, असएष धन और, राजसी धैर्य पर अपना अस्तत्र अधिकार देख, दोनों में एक साथ चढ़े हुए दर्पदाह ज्वर की दाह बुझाने को सदुपदेश शीतलोपचार इनके लिये किसी भाति कारगर न हुआ। यजुआ से, यावू साहय बनन का शौक बढ़ा, जी में नई २ उमर का समुद्र उमड़ २ लहराने लगी। सेठ की दीलत पर, गीघ, के समान तारु लगाये बैठे हुए मीरशिकार भाड भगतिये-दूर २ से आ जमा होने लगे, खुशामदी घुटकी बजानेवाले मुक़बोरोंकी बन पडी। चन्दू की शिक्षा के अनुसार चलने की कौन कहे उसके नामकी चर्चा मीरचिचमें दोनों को बिच्छू के डक की भाति ध्यथा उपजाने लगी। इनकी पसन्द या तयियत के चिराफ जरा सा कोई कुड़कुड़ पड़ता तो वह इनका पूरा दुश्मन बन जाता था। चन्दू जब कोई अनुचित बात इनकी देखता उसी दम इन्हें टोक देता और आगे के लिये सावधान हो जाने को चिता देता था। यह इन दोनों को जहर लगता था और जी, से यही चाहते थे कि कौनसा पैसा शुभ दिन होगा कि इस खूसट से हमारा पिरहट छूटैगा। जो अनन्तपुर, सेठ जी सरीखे विद्यारसिक भोजदेव के

मानो नयाघतार के समय दूर से झुड के झुड नित्य नये विद्वान के आने जाने से छोटी फाशी का नमूना बना हुआ था वही प्रब भाड भगेतिये, कत्यक कलामेता के भर जाने से लखनऊ ओर दिल्ली की अनुहार करने लगी। इस घात का हीसला हमारे बाबू साहेब को नित २ चढता ही गया कि जो अमारी के ठाठयाठ हमारे यहा हो वह अवध के बडे २ नीचायतों और तालुकदारों के यहा भी देखने में न आये। यडे बाबू का हीसला देण छोटे बाबू साहेब क्यों पीछे हट सकते थे, इस तरह दोनों मिल खेत सींचनेवाले दोगले की भाँति सेठ की चिरकाल की कमाई का संचित धन दोनों हाथ से उलव २ फेकने लगे। इस तरह वहा अजान लोगों को दख इकठ होते देख और इन दोनों के बुढझ और कुचाल बढती देख चन्दू सा सुजान अतानक अन्तर्धान हो गया, पर जी में इसके इस घात की चोट लगी रह गई कि हरीचंद सरीखे सुदती की सपत्ति का पेसा युवा परिणाम होना अत्यन्त अनुचित है।

पांचवाँ प्रस्ताव।

इक भीजे चहले परे बूडे वहे हजार।
किते न ऐगुन जग करत नैवै चढतीवार।

शिशिर की दारण की शीत से जैसे सिक्कुडे हुये देहधारियों के एक २ अग धसन्त की सुखद ऊष्मा के सचार होते ही फैलने लगते हैं, उसी तरह कुसुमवान की गरमी शरीर में पठने ही नव युवा ओर युवतियों के अग प्रत्यग में सलोना पन भीजने लगता है। तन में, मन में, जैन में नई २ उमरें

बहने को जरा भी किसी ने दूगा कि निउगी बदल जाती, मिजाज बग़्गम हो जाता था। दुर्व्यसन के विषय का धीज बाने वाले चापलूस चालाकों की बन पटी। एक चापलूस बोलता "बाबू साहब आप के घराने का घडा नाम है; आज दिन नवध के रईसों में आप का शीखल दरजा है, यद्ये सेठ माहय म धे सादे बनिया आदमी ये इमलिए उनको 'घही मोहाता था, अब आप का नाम यद्ये २ तशल्लुसेदार और रईसों में है। आप की रक़्म जर्त और इज्जन बहुत बढ़ी है, नित्य का आना जाना ठहरा एक न एक तकरीब, जलसे और दरवार हुआ ही करते हैं, तब आप वैसा सर सामान न कीजियेगा तो किम तरह बाप दाशों की इज्जत और अपने ग़ानदान की बुनूर्गी कायम रख सकियेगा"। दूसरा बोला—"जीहा हज़ूर, बहुत टोक है सामान तो, सब तरह का इच्छा करना ही चाहिये"। तीसरा बोला "इन सजाघटों के लिए लाख पचास हजार रुपये आपके लिए क्या हकीकत है। मैं हाल में लखनऊ गया था, एम० बी० कम्पनी की दुकान पर शीशेआलान बगैरह का नया चालान आया है, मैं समझता हूँ आपके कमरों की सजाघट के लिए पन्दरह बीस हजार के शीशे काफी होंगे"। बाबू साहब इन धूर्तों की चापलूसी पर फूल उठते थे। जिसने जो कुछ कहा तत्काल उन्ने मज़ूर कर लेते थे। आठ बार नौ तेवहार लगे ही रहते थे। दिन बाग़ बगीचा की सैर, थार दोस्तों के मेल मुलाकात में बीतता था, रात नाच रंग और जियाफतों की धूमधाम में कटने लगी। दिल्ली, आगरा, बनारस, पटना के नामों का गफ़े सदा के लिए अनन्तपुर में बुला कर टिका लिए गये; अपने घर का सब काम काज बख़ाना भालना तो बहुत दूर रहा चेंडे बाबू साहब

को झुड़ी पुरजों पर दस्तखत करना भी निहायत नागवार होता था। मुनीम और गुमाशतों की बच पड़ी। सब लोग अपना अपना घर करने लगे, इधर ये दोनों हाथों से दौलत को उलब-उलच फँकते थे, उधर मुनीम गुमाशते तथा और फायकर्ता जिनके भरोसे इन दोनों ने सब काम छोड़ रक्खा था अपना घर भरने लगे। इसी दशा में हीरा चन्द के सुरुत धन का हाल सो जगह से रसते हुये घने का सा हो गया जो देखने में कुछ नहीं मालूम होता, किन्तु थोड़े ही अरसे में घड़ा छूले का छूटा रह जाता है। सब हे —

“समायाति यदा लक्ष्मी नारिकेलफलाम्बुवत्
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्।”

लक्ष्मी जब आने लगती है तो नारियल के फल में पानी के समान आती है, भीतर पानी इकट्ठा रहता है बाहर किमा को नहीं पता लगता। वही जब जाती है तो होंथी के छाय कइये के समान होता है। कइया समूचा हाथी लीद कर देता है, पर भीतर का गुदा गायब रहता है।

छट्वां प्रस्ताव ।

“किमकार्यकार्याणाञ्च”

ग्रीष्म की ऋतु है। जेठ का महीना है। दोपहर का सत्रय है। सब ओर सन्नहटा छा रहा है। तिग्माशु का तीखी सरतर किरणों से समस्त ब्रह्माण्ड तचे तोहपिएड का अनुहार कर रहा है। क्या खायर, क्या जगम याचत् पदार्थ

सब पानी ही पानी रूट रहे हैं- जिसे छुओ घड़ी अगारे सा गाम थोप होता है, मानो त्वगिन्द्रिय शीत स्पर्श से निराग हो जल में शैत्य गुण का निर्देश करने वाले (शीत स्पर्शवत्याप) कणाद महामुनि की बुद्धि का भ्रम, मान बैठी है। एक तो अत्यन्त दण्डायमान दिन उसमें- ललाटन्तप चण्डाशु के प्रचण्ड, आतप-के-ताप, से सन्नप्त, शीतलच्छाया का सहारा किये हुये, यह जगम जगन् भी स्थिर भाव धारण कर मौन-अवस्था से दु खदापो-श्रीष्म के उच्चाटन का मानो मन्त्र-सा जप रहा है। जगम जगत् की इस मौन दशा में कभी कभी पुराते खडहरों पर बैठी चील-का भयङ्कर-किकियाना जो कानों को व्यथा पहुँचा रहा है सो मानो घीच घीच उस-उच्चाटन मन्त्र की सुमरनी पूरी होने का पता देता है। प्रत्येक गृहस्थों के यहाँ घर, घर सब लोग, भोजन के उपरान्त विश्राम सुप का अनुभव कर रहे हैं; नींद आ जाने पर पत्ता हाथ से छुट गया है, पुराते भरने लगे हैं। स्त्रियाः गृहस्थों के काम-काज से छुटकारा पाय दुधमुँहे बालका को खेला रही हैं। कोई कोई बालक बालिकाओं को इकट्ठे कर उनके रिक्ताने की कहानिया कह रही हैं। कोई कोई नवोद्गा, अपनी हमजौली सपनी सहेली को गतरात्र में अनुभूत प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा सुना रही हैं। कोई कोई रूपग चिता, धार धार, धर्पन में मुख देख-वेश, भूषा की सजावट कर रही हैं। कोई कोई ब्रडी जगरैतिन गृहस्थी का सब काम शेष होते देख जोठ के दीर्घ, दोपहर की ऊय दूर करने की सूपा की फटकार से, अपने परोसी के विश्राम में चित्तैप डाल रही हैं। दवा के साथ लटनेवाली कोई ककशा, न-लडैगी तो खायो हुआ अन्न कैसे पचैगा यह सोच अपने परोसियों पर धान से तीखे और रूटे चवन की चर्पा कर रही है। कोई सरला

सुशीला घर की पुरखिन अपनी वह बेटियों को एकत्र कर उन्हें अच्छे-बच्छे उपदेश दे रही है। कोई पढ़ी लिखी एकांत में बेंठी तुलसीकृत रामायण या सूर के पदों का अभ्यास कर रही है। कोई कोमलागी अपनी प्यारी सखी को कसीदा या कारपेट सिखानी हुई परस्पर प्रेमालाप के द्वारों-मध्यान्ह के निकम्मे घंटों को सफल कर रही है। खेलवाड़ी घालेंक जिन्हें इस दोष हर में भी खेलने से विश्राम नहीं है, गर्वें हाकते हुए दूसरे खेल का बन्दोबस्त कर रहे हैं। बगलों पर साहब लोगों के पदाघात कारसिक पयाकुली अपने प्रभु के पाठपत्र को मानों बारम्बार मुक मुक प्रणाम करता सा ऊघ रहा है पर पखे की डोरी हाथ से नहीं छोड़ता सहिष्णुता और स्वामिभक्ति में दृढ सौहार्द इसी का नाम है। अस्तु, ऐसे समय रंगीन कपड़ा सिर पर डाले अठखेली चाल से एक नौजवान आता हुआ दूर से देख पडा। धीमे स्वर से कुछ गाता हुआ चला आ रहा था, ज्यों ज्यों पास आता गया इसकी पूरी पूरी पहिचान होती गई। पहिले इसके कि हम इसका कुछ परिचय आपको दें यह निश्चय जान रगिये कि चंदू सरीखे बुद्धिमानों के सदुपदेश के अक्षुर का बीजमार करने वाला अकालजलदोर्दय के समान यही मनुष्य था। यद्यपि अत्यन्त पुर में सेठ के घराने से इस कर्दय का पुराना सम्बन्ध था; किन्तु सेठ हीरा चन्द के जीते जी इसका केवल जाना जाना मात्र था। इसके धिनौने काम और दुराचार से हीरा चन्द सदा घिन रखते थे। इस कारण जब तब इसे ऐसी फटकार उतलाते थे कि इसकी हिम्मत सेठ के घराने से अत्यन्त घिष्ट विष्ट रखने की न होती थी। पाठकजन, यह सेठ जी के पूज्य पुरोहित के घराने का था। नाम इस का वसन्त राम था

ए सब लोग इसे बसन्ता बसन्ता कहा करते थे। नाक फसडी, एठ मोटा, श्राव धुब्बू-सी, माथा धीच मं गधेदार, चेहरा गल, रंग काला मानों श्रंजन गिरि का एक टुकड़ा हो। पढना लेखना तो इसके लिये काला श्रद्धार भंस यदाच था। जब ए मा के गर्भ में था तभी इसके श्रा ने यमपुर की राह ली। एल नाम माण के ब्राह्मण, इन पुरोहितों की पढ़ते तो सृष्टि की निराली होती-है कि पुरोहिती कस से जीने वाले माँ चास इकठ्ठे किये जाय तो त्रिले एक दो उनमें से, ऐसे निकः रंगे जा श्रावारगी उजड़पन, श्रा उड़ोरेपन से खाली होंगे, वेधा, गुण अथवा किसी प्रकार की योग्यता का तो जिकर तो। क्या उनमें साधारण, सीति की मनुष्यता हो मानो यडी शल है, तय-इस रगटा पुत्र का कहना, ही क्या। इस धभाग तो तो जन्म ही से कोई कुठ कहने सुनेने वाला न था।

एकेनापि कुपुत्रेण कोटरस्थेन वहनिना ।

दह्यते तद्वनं सर्व कुपुत्रेण कुले यथा ॥

कुपुत्रों में भी यह उस तरह का कुपुत्र न था, कि जोडर में रखी श्राग के समान घेवल अपने ही कुल का मस्म करे श्रापिच जहा जहा इसको थोडी भी पैठ या संचा हो गया, जहा प्रहा इसने भरपूर अपना सा उस घटानेवालों को कर दिखाया। यह सदा इसी ताक में रंहा करता था कि किस घगने में कौन २ नये केडे हैं। उन्हें किसी न किसी तरह अपने ढङ्ग पर चढाय श्रातिरखाह गुलछरें उढाया करता, जब देखा अब यहा कुछ सार न रहा तो निर्गन्धोज्झित पुष्य के समान उसे त्याग भ्रमर के समान दूसरा टौर ढुढ़ने लगता।

इस काम से इसने न जानिये कितने पुलप्रसूत नई उमर धाओं का शिकार कर अमीरशिकारी के फन में पूरा उस्ताद हो रहा था । इन धावुओं को तो इसने ऐसा फसा रफसा था कि इसके बिना उन्हें एक दम चैन न पड़ती, मानो दोनों धावुओं का यह बसन्ता सर्वस हो गया था । और यह ऐसा चालाक था कि जिस ढङ्ग पर चाहता फाउंट के खेलीने के माफिक दोनों को डुलकाता फिरता । हम पहले लिख आये हैं कि यह पढ़ा लिखा न था तब हबशियों के से इसके मोटे मोटे घोठों पर बड़े बड़े और चौड़े दातों को देख "कचिदन्ता मवेन मूर्ख " सामुद्रिय के इस लक्षणमें कचिद शब्द की चरिनायता मानो इसी के लिये रक्खी गई थी, बड़े दांत वाले कोई भूख देखे गये तो धंही । दूसरे इसकी कमी आस साखी दे रहो थी कि कदर्यता इसमें, किस दर्जे तक पहुँची हुई है । पाठक, आप इस बसन्ता से भरपूर परिचय कर रक्खिये, अभी आप को इससे बहुत काम पडना है, क्योंकि हमारे इस किस्से के कई एक नायक प्रतिनायकों में चद्रू का प्रतिनायक यही होता रहेगा । चन्द्रू सा सुपात्र भला मानुस और बसन्ता के समान नटघट सुपात्र कहीं फिरले पाओगे । हम ऊपर सूचित कर आये हैं तमाशवीनी पर कतर कसे इन धावुओं के कारण वारबनिताओं के अधिक सघट से अनन्तपुर इस समय दिल्ली, लखनऊ का नमूना बन गया था । बसन्ता को धावुओं का तन, मन समझ सब ही धारदिलासिनी इसकी पुशामद में लगी रहती थी । यों धावु साहब यरायनाम पाठ के उल्लू बना कर धाप दिये गये थे असिल में मानो हीरा चन्द्र का, यलीबदव यही बन बैठा था, और उनके धन का सखा सुख भोगने वाला यही अपने को मानता था । ऐसे दोपहर के समय यह कय

घर से निकला और फ्या इसका मासूया था इसका रहस्य जानने को कौन न उरुनाता होगा किन्तु सहसा किसी रहस्य का उद्घाटन उपन्यास लेखकों की रीति के विरुद्ध है इससे उस प्रस्ताव को यही समाप्त करते हैं ।

सातवां प्रस्ताव ।

सन्ततिः श्लाघ्यतामेति पितॄणां पुण्यकर्मभिः ।

अन्तपुर से ईशानकोण को हो, कोम, पर एक मठ था । यह मठ किमी प्राचीन देवस्थान में, हो, इसका कहीं से कुछ पता नहीं लगता, क्योंकि किसी पुराने लेख, इतिहास या पुराण में इसकी कहीं चर्चा नहीं पाई गई । किन्तु साथ ही इसके यह भी कोई नहीं जानता कि कब से इस मठ की पूजा और मान आरम्भ किया गया, न यही कोई बता सकता है कि किन्तु बड़े भिन्न-या, महात्मा का यह आश्रम या तपोभूमि है । इस मठ में किसी देवी देवता की मूर्ति न थी, न उसके समीप आन पास कोई कुड्ड, देवखाठ, नदी, झरने, धादि, थे जिससे हम इसे कोई पुराना तीर्थ कह सकें । इस मठ का कुल हलका पौन कोसों के गिर्द में था, चारों ओर से लहलहे सघन वृक्षों की शीतल छाया और ठोर २ लताओं से छाये, हुये कुज की समशीयता मन को हरे-लैनी थी । प्रीष्म का सन्ताप और जाडे की कपकपी कभी बृद्ध नाम को भी न व्यापती थी । बरसात के पानी का एक झच्छा लहरा घने वृक्षों की छाया में एक साधरण सी घूदाघादी मालूम होती थी । बोध होता है मानों ये सब विटप और लतायें सपा,

घात, शीत, आतप के निवारक इस मठ के लिये एक कुदरती छाता बन गये हैं। हम ऊपर, लिख आये हैं कि वहाँ फोड़ ब्रह्म मन्दिर या किसी देवता की प्रतिमा स्थापित न था जिससे कोई चिन्ह तीर्थ होने का वहाँ प्रगट होता हो; किंतु तपोभूमि सदृश उस स्थान का-माहात्म्य ऐसा देखा जाता था कि वहाँ पहुँचते ही मन में सतोगुण का भाव आप स आप उदय हो आता था। मन कैसा ही उदासीन और मलीन हो वहाँ जाने से प्रसन्न और प्रफुल्लित हो उठता था। मुख्य स्थान इस आश्रम का कई एक पुराने पुराने बट वृत्तों के बीच एक मठों सी थी, जिसके भीतर गंज भोर का लम्बा चौड़ा और आध गज ऊँचा एक पक्का चक़तरा सा बना था। यात्री या जियारत करने वाले उसी चक़तरे की पान फूल मिठाइ इत्यादि से पूजा करते थे। दश बीस कोस के गिद में यह स्थान ऐसा प्रसिद्ध था कि दूर से लोग यहाँ मानमनौती करने आते थे। इस चक़तरे के एक ओर एक धूनी सी थी जिसमें रातदिन गुग्गुलु, लोहयान और चन्दन की लकड़ी सुलगा करती थी। लोग कहते हैं यह अग्नि यहाँ द्वार के अन्त से आज तक नहीं बुझी और अर्जुन ने जब खीएडव बन जलाया था तो उसका परिशिष्ट अग्नि लाके यहीं स्थापित कर दो, और प्रलय काल में जब महादेव जी के तीसरे नेत्र से अग्नि निकल कर सम्पूर्ण विश्व को भस्मसात् करेगी उसी में यह धूनी को आग भी मिलकर शिव की नेत्राग्नि को दोचन्द भटका देगी। इस मठ के पण्डे या पुजेरी थोड़े से जटाधारी काले काले योगी या गुसाई लोग थे। ये ही यहाँ प्रधान तथा मुखिया थे। जो कुछ इस मठ में चढ़ता था वह सब इन्हीं लोगों में बट जाता था। आमारगी, उज्ज्वलन और अस्त व्यवहार में ये गुसाई भी और

और पड़े तथा तीर्घलियों से किसी यात में कम न थे। इस ध्यान के पुरातन और पवित्र होने में कोई संदेह नहीं, किन्तु इन अपठ यागियों का दुराचरण देख घिन होती थी और यह मठ यहा तक बदनाम हो गया था कि बहुत से भलेमानुष शिष्ट जन वहा आने या साल में जो कई मेले इस मठ के हुए प्राकाने थे उसमें शरीक होना मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। वैशाख और जेठ दो महीने के प्रति मङ्गलवार को यहा यडी भीड़ होती थी, हजारों आदमी आसपास गाव और नगर के यहा आते थे। सैकड़ों दुकानें लगती थीं। सवेरे से दश घंटे रात तक इस मेले का ठाठ रहता था।

हम अपने पाठकों का इसके पहले एक नये आदमी का परिचय दे चुके हैं। जानाँ बाबुओं का मानो, जिन सूर्यस्य या, जिसके बिना एक क्षण इन्हें कल न पडती थी और बाबुआ का-इसके चगुल में देखे भीड़ के भीड़ आछे छिछोरे इसकी खुशामद में लगे रहते थे। उन्हीं में इस मठ के बहुत से योगी भा थे इस लिये इस मठ में तो मानो वसन्त राम का राज सा था। जो २ अत्याचार यहा आ यह कर गुजरना था वह सुरा तो सब को लगता था, कई एक बूढ़े २ गुलाई तो लहू का घूट पीकर रह जाते थे, पर उन बाबुआ के मुलाहिज से कुछ न कहते थे। यद्यपि ऐसे २ छिछोरो के दु सग से, इन दोनों बाबुओं की भी सब कलाई दिन २ खुलती जाती थी और सम्मान जैसा औरल दरजे के रईसों का मिलना चाहिये, उस में भले लोगों के बीच नित्य २ कमी होती जाती था, तौभी पुराने सेठ, सुकृती हीरा चन्द को पहिली बातों को याद कर सभी चुप रह जाते थे। क्या अचरज इन गुलाइयों का भी हीराचन्दही की भलमनसाहत का न्याल आजाता था,

जिससे ये लोग बसन्ता तथा इन वायुओं का अनेक तरह की उपद्रव मठ के मेलों में देख कर भी घुप रह जाते थे, जो हा प्रस्तुत का अनुसरण करते हैं।

एक बूढ़ा प्रहारेण—“हाय २ हाफते २ कण्ठगत प्राण आ रहा है। झूठ कहते हों तो हमारे सात पुरखा नरक में गिरें। न जानिये आज किस कुसाह्त में घरसे निकले कि हाथ गरम हाना कैसा एक फूटी भभी से भी भेंट न हुई, भीड और हुल्लड के घिस्सघिस्सा में अग चूर चूर होगया। भला बचकर किसी तरह से बाहर निकल आये मानों लाखों भर पाया। क्या कहते हैं 'तो क्यों आया'। अरे न 'आवें' तो क्या करें'। एक तो गरीब दूसरे बडा कुनवा अथ भी क्या हीरा चन्द से। दानी और पात्रापात्र का विवेक रखने वाले बैठे हैं जो हम ऐसों की दीनता पर पिघल उठेंगे। ईश्वर इनका सत्यानाश करे न जानिये कहा कहा के थोड़े छिटोरे इकट्ठे होगये कि हमारे वायुओं को बुढ़ग पर स्वदाय बिगाड डाला। सेठ के समय तो हम किसी के आगे हाय। पसारना कैसा, घर के बाहर कभी पावे भी नहीं रखते थे, वही अत्र एक तुच्छ से तुच्छ आदमियों के सामने दिन भर गिडगिडाते फिरते हैं तब भी साभ को अच्छी तरह पेट भर अन्न नहीं मिलता। आज इस मठ का मेला समझ जाये ये कि किसी से दो चार पैसे पागे जायगे, सो इस बसन्ता का सत्यानाश हो पांस का भी जो कुछ आजकमाया था सब खो चले और तन का एक २ कपड्ड देखो चिरबत्ती हो गया। बचा की खूब पूजा भी की गई जेम भर याद रहेगा। अरे यह कहो न जानिये किस की पुन्याई सहाय लगी कि दौंगे बाबू सहल कर निकल भागे नहीं तो सर्व इज्जत खाक में मिल जाती, और कब तक बचे रहेंगे, यही सञ्चन है तो

एक दिन घडई का हाथ गया दाखिल है । घडरे की मा कब,
 एक और मनावेगी । हा ! सोने का घर खाक में मिला जाता है ।
 क्या कहते हो 'यटे सेठ वायुओं को तो चन्दू के हाथ में सौंप
 गये थे' । हा हा सौंप तो गये थे पर कण्टकरूप दुष्टों के
 रहते जब उस बेचारे की कुछ चलने पाती ? लाचार, हो यह
 भा छोड़ कर चला गया । चन्दू से गुनी, मुशील, भलोमानुष
 का तो जहा तक तारीफ की जाय सब कम है । उसके सूर्यश
 की सुगन्धि के सामने बूढ़े याया मण्डन महाराज थे । एम लोग
 भूल ही गये थे । धिक् ! नराधम ! पापी ! कर्मचाण्डाल ! तेरा
 इतना साहस कि तूने मले घर की वहिअरवानियों का सतीच
 नष्ट करना अपने लिए मोद और दिलवहलाय समझ लिया
 था । हा ! हा ! हा ! यचा पर हाथ पडती, छिरियों का मेख घर
 कैसा वहिअरवानियों में आ मिला था । पूजा भी हुई और
 अर पुलिस के चगुल में पड गया है ये लोग सब तके हई
 हैं बसन्तवा से भरपूर दाव लेंगे । सच है घुरे काम का दुरा
 अजाम । दोनों यात्रू भी बसन्ता की इस दुष्ट अभिसन्धि में
 अवश्य थे, कुशल हुई जो इन्हें भी इसमें फँवते देख एक
 आदमी इनको उसी भीड से किसी तरह अलग कर गाडी पर
 चढाय लै भागा । यह आदमी कौन था, मैं अच्छी तरह न
 पहचान सका पर मुझे दूर से चन्दू का सा चेहरा उसका
 मालूम हुआ । जो हो अब हम भी घर जाय" ।



आठवां प्रस्ताव ।

कोयला होय न ऊजरो सौ मन साधुन ला

यद्यपि इन दोनों पाषुओं के आप का पानी ठरक गया था शरमे और हया का पी बैठे थे, कार्य-कार्य में इन्हें कुछ सकोच न रहा, धष्टता, अशालीनता और बह्यार्थ का जाना पहचान सब भाँति निरङ्कुश और स्वच्छन्द बन गये थे। पर उस दिन इन का पुलिनाक घेर में आ जाना और घसन्ता क साथ इन की भी लेव देव परने पर लोगों की ताक देव दोनों कुछ कुछ सहम से गये और मनीमन अपनी कुचाल पर फायर होने लगे। वह आदमी जिसे हम सौ अज्ञान में एक सुजात कहेंगे और जो इन दोनों का भीट-स बाहर निकाल लाया, जिसका पूरा परिचय हम अपने पाठकों को दें चुके हैं, इन्हें पर पहुँचाय इनसे विदा मागी। ये दोनों अत्यन्त लज्जित से, आप हमके सामने न कर सके, सिर नीचा किये घर तक गाड़ी पर बैठे चले धाये। गाड़ी से उतरते भी इन की कुछ धोले की हिम्मत न होती थी, किन्तु उनके उम समय के हृद्गत भाव से प्रगट होता था कि ये दोनों उस महात्मा सुजात के चडे पहसानमन्द् हैं। इन्हें अत्यन्त लज्जित और बुझामन देख यह धोला "चावू तुम कुछ मत उगो न किसी तरह का सकोच मन में लाओ, बीती यान का श्रव विचार ही क्या "गत न शोचामि" आगे के लिए सहूल कर चलो। अभी पुक बिगडा नहीं, सधेरे का भूला साधु को श्रावे तो उस भूला न कहेंगे। श्रव इस समय तो रात हो गई रहे धकाये हो जाय या पीकर शाराम करो। कल सधेरे में तुम्हारे यार कि बचाऊगा" यह कह उचाने अपने घर की राह ली।

अथ नित्य के आने वाले सन्नहटा पाय लौटने लगे । कोई कहता था "आज क्या सयब जो बाबुओं के बैठने का कमरा बन्द है, यमन्ता भी नहीं देखा पड़ता । बाबुओं को भगवान् मलामत रक्खे हम लोगों की घडी दो घडी बडे चैन और विलगगी में कटती है । हम लोग यहा बैठ कितना हरतागुस्ता और धीलधगाड किया करते हैं पर धाबू साहब कभी च नहीं करते" । दूसरे ने कहा "सच है रियासत के माने हा यह है, इस समय अथ इस दरवार में तो दूसरा पेसा ईस नहीं है, हरकसेयाशद कोई आवे यहा से आजुर्दा न लांटेगा" । तीसरे ने कहा "सच है, इसमें क्या शक, बाबुओं को जितनी तारीफ की जाय सय जा है, पर यार यमन्ता भी यहा बेनजीर आदमी है । यह सय उसी के दम का जहूडा है । जब से यमन्त राम का अमल दखल हुआ तब से हम लोगों ने भी इस दरवार में जगह पाया । बडी घात, मनइस कदम उस पण्डित का तो पेरा उडा, यमन्ता ही पेसा था जिसने हजार २ कोशिशों के बाद बाबुओं को उसके चगुल से छुटाय आजाद किया, न जानिये कहा का मरा चिलाना कुन्देनातराश इस दरवार में आ भिड गया था ।"

इधर हा दोनों में बड़े को जिसे छोटे की अपेक्षा कुछ २ समझ था चली थी मन में भाति २ का हरन गुनन करते टाइमपीस पर घटा और मिनिट गिाते नोड न पडी । रात भोर हो गई, चिडिये बह चहाने लगों, स्कूल के पढने वाले परिश्रमी बालक ग्राह्मी पैला समझ अपना २ पाठ घोख २ सर न्यती देवा का अनुशीलन करने लगे । प्रत्येक घरी में बृद्धजन समस्त दिन का कल्याण सूचक हरि के पवित्र नामोच्चारण में तत्पर हो गये, कामीजने रात भर कामकेलि में पिताय

प्येरे की ठंडी हवा पाय धीगुना घुरांटा भरने लागे; चर-
 खागों में अफीमची और चण्डवागों की रात भर की पालिषा
 मेंट के घाद पीनफ की सुघनीद पा प्रारम्भ हो गया; आस
 पास मन्दिरों में मंगला आरती के समय का सूचक घडियाकी
 और शंख शब्द सुन भक्त जा जय जय कहते दर्शन के लिये
 दौड़े, फेरी घाते भिक्षमने भोरही; आलापते गलियों में
 घूमने लगे; पीफट होते ही अपनी प्रियसी निशा नायिका का
 वियोग समझ चन्द्रमा के मुख पर उदानी छा गई; बने २ के
 मय माथो होते हैं बिगटे समय कोई साथ नहीं देता मानो
 इस घात को सिद्ध करते अपने मालिक चन्द्रमा को विपत्ति
 में पडा देय नमकहराम नौकर की भाति तारागण एक २
 कर गायत्र होने लगे, अथवा काल फैवत ने आकाश महा
 सरोवर में निशारूपीजारा बड़ी दूर तक फैराय जीती हुई मङ्गली
 की भाति सचों को एक साथ समेट लिया, अथवा यों कहिये
 सूर्य लक्षा क्यूतर की तरह अपनी कायुक से निकलते ही
 बाघल की बडी २ किनही से इन ताराओं को एक २ कर
 सचों को चुग गया, अथवा घात सन्ध्या अपने रक्तोत्पलसङ्ग
 हाथ को सन जार फेलाय फेलाय अपनी प्रिय सचों घासली
 का उससे शान्त दिनमणि सूर्य से मिलने का समय जान, इन
 तारा मीकियों वा हार उसके लिये गुथन को इन्हें इकट्ठा
 कर रही हैं। अपने निजयी प्रभाकर की विजय पताका समान
 सूर्योदय की लाठी सब थोर दिशा विदिशाओं में छा जाते ही
 अन्धकार का इदय सा मागे फट सी, २ टुकड़े हो गया।
 शने शन उदवाचलबालमन्दार के फूलों वा गुच्छा सा,
 अथवा पूर्व दिग्गता के लिलार पर रोली का लाल बँदा सा,
 या उसी के फान का घुण्डल सा, या-आसमान गुन्धन पर

सोने का कलश सा अथवा देवाह्वनाओं के मस्तक का सीस फूल सा अथवा चराचर विश्वमात्र को निगल जानेवाले काष्ठ महासर्प का अंडा सा, कमल के घन को प्रफुल्लित करता हुआ चक्रमाक के विरहाग्नि को बुझाता हुआ, जगमं जगत्मात्र के नेत्र को प्रकाश पहुंचाता हुआ, श्रोत्रिय धर्मशील ब्राह्मणों को सन्ध्या और अग्निहोत्र आदि कर्म में प्रवृत्त करता हुआ, सूर्य का मण्डल पूर्व दिशा में सुशोभित होने लगा । सब लोग अपने अपने रोजमरों के काम में प्रवृत्त हुये । चावू भी रात भर जागने की सुमारी में अलसाने से शीघ्र कर्म और दतून कुल्ला स फारिग हो अपने कमरे में आ बैठे किन्तु आज रोज का सा इसका चेहरा सुश न था । देखते ही भासित हो जाता था कि चित्त में इसके कोई गहरी चोट का धक्का लग गया है । नौकर चाकर तथा और सब लोग जो इसके पास नित्य वे आने वाले थे इसे उदास और बुझा मन देख मनीमन अनेक तरह के तर्क वितर्क करने लगे, पर इसकी उदासी का कारण न जान सके ।

इसी समय चन्द्र दूर से आता हुआ देख पड़ा । परिडताई, नेकचलनी और पल्ले सिरे का खरापन इसके चेहरे पर झलक रहा था, इसकी गभीरता और सागर समान गुणगौरव में खच्छ उदार भाव मानो लहरा रहा था, इन वायुओं की मलाई और खीर-ग्राही इसे, दिल से मजूर थी, लल्लोपचो, जाहिरदारी और सुमाइश की जरा भी गुजाइश इसके मिजाज में न पाय दुनियादारों की इसके सामने कुछ न चलती थी, जो लोग वायुओं को फसाय अथ तक घेसटके लूट मार या पी रहे थे उनके जी में खलबली पैठ गई, कानो कान कहने लगे—“क्या है ! जो यह मनहस कदम आज फिर यहा देख पडा, इसके सामने अब हम लोगों की एक भी न चलेगी,

बड़े मुश्किलों से इसका पैरा यहाँ से चढ़ गया था, क्या सब हुआ जो यानुओं को आज इसकी फिर चाह हुई"। चन्दू को आया देख यावू उठ खड़े हुये, इसका पाव, छू हाथ पकड़ अलग कमरे में ले गये और मना कर दिया कि यहाँ कोई न आवे । यहाँ बैठ इधर उधर की दो एक और बात कहने के उपरान्त चन्दू बोला —

“यावू, अब तुम्हें इन साथियों की परख हुई होगी । ये सब अपने मतलब के यार हैं, तुम्हें सब तरह पर विगाड़ अपने अपने घर बैठेंगे । सपूती के ढग से बड़े सेठ जी के देपाये पथ पर, जो, अब तक तुम चले गये होते तो तुम्हारे सुयश की सुगन्धि ससार में चौगुनी फैलती । सभ्य समाज और बड़े लोगों में प्रतिष्ठा और इज्जत पाते, धन संपत्ति भी चन्द्रमा की कला समान दिन २ बढ़ती जाती । यावू, मैं जी से तुम्हारा उपकार और भला चाहता हूँ किन्तु जब मैंने अपनी ओर तुम्हारी अश्रद्धा और अरुचि देखी तो अलग हो गया, अस्तु अब भी तुम चेतो और अपने को सन्हालो, अभी कुछ बहुत नहीं विगड़ा, सेठ जी के पुण्यभताप से तुम्हें कमी किस बात की है ? यावू, तुम ऐसे निरे मूर्ख भी नहीं हो जो अपना भला बुरा न समझ सकते हो, किन्तु तुम भी क्या करो यह नई जवानी का मद्दरूप अन्धकार ऐसा ही होता है जो नसीहत और उद्देश के सहज दीपावली की जगमगाहट से भी दूर नहीं हो सकता । इस उमर में जो एक प्रकार की धुंधी सवार हो जाती है, जिसे दर्पदाहज्वर की गरमी कहना चाहिये, वह सैकड़ों शीतोपचार से भी नहीं घट सकती । विष समान विषयास्वाद से उत्पन्न मोह ऐसा नहीं होता कि भ्रार फूक और टोना टनमन का कुछ असर उस पर पहुँचे—

"इस चढती जवानी में यदि कहीं ईश्वर का दिया सब सामान भोग विलास का, और मनमाना घन सपत्ति मिली तो शिक्षा, विज्ञान, चातुरी और फिलासफी सब, उल्टाही अस्त्र पैदा करती हैं। उपदेश और विद्याभ्यास दोनों इसी हिये हैं कि आदर्मी को बुरे कामों की ओर से हटाय भले कामों में लगावें। यह एक प्रकार का ऐसा स्नान है जो शरीर क नहां वरन् मन के मैल को धोकर साफ कर देता है। इस पुनीत तीर्थोदक में एक बार भी जिसने भक्ति श्रद्धा से स्नान किया है वह जन्म भर के लिये शुद्ध और पवित्र हो जाता है; और उपयुक्त समय इस तीर्थोदक से स्नान का यही था। सेठ जी से बुद्धिमान यह सब सोंच समझ तुम्हें मेरे सिपुर्द कर आप निश्चिन्त हो बैठे थे। मैंने पहले ही कहा कि श्रद्धा इसके लिये पहली बात है, जब उसमें कमी देखी गई तो हम अलग हो गये। फिर भी सेठ जी का पूर्व उपकार समझ जी न माना इसलिये आज फिर मैंने तुम्हें एक बार और चिताने का साहस किया। आशा है अब आप मेरे इस कहने पर कान देंगे और अपने काम काज में मन लगावेंगे—

"तुम्हें चाहिये कि तुम ऐसे ढग से चलो कि भले मनुष्यों में तुम्हारी हसी न हो, बड़े लोग तुम्हें धिक्कारें नहीं, तुम्हारे हितैषी तुम्हारा सोंच न कर, धूर्त भाड भगतिये तुम्हें ठगें नहीं, चतुर सुजान तुम्हाग निगदर न कर, सुशामदी लोग अपने कपट जाल में तुम्हें फसाय शिकार न बनावें; ओठे और दुश्मों की सोहबत से दूर हटते रहो बुद्धिमान लोग कह गये ह—

नाक लाज अरु आफत काज

द्रव्य बचा के रासो साज ।

“यह मत समझो सेठ जी की कमाई सदा ऐसी ही खिचनी रहेगी, बराबर खर्च करते रहो और उसमें मिलाओ कभी कुछ नहीं तो असख्य धन भी नहीं रह जाता। और भी कहा है—

घर का खर्च देखा करो,
भारी देखो हलका करो।

“बाबू अभी तुम्हें नहीं मालूम होता पीछे, पड़ताओगे। चिकने मुह के ठग की भाति इस समय सवी तुम्हारी हा में हा मिलाते हैं पीछे तुम्हारी छाया तक बरकाने लगेंगे। कहावत है—‘छूछा तोहि को पूछा’

तिहीदस्ती भी चलाती है कही अच्छी चाल।
खाली थैली न खड़ी होगी कभी लक्खो साल।

“मन नहीं सिन्धु समाय” । इस मन की उमंग को बढ़ाते क्या लगता है, एक घात में जरा सा तरहदारी और अच्छेपन का दखल होना मात्र चाहिये। अच्छी धोती को अच्छा अनरसा, अच्छी पगड़ी न होगी तो सजावट और तरहदारी कोसों दूर भर्गेंगी। जब अच्छा दुशाला हुआ तो मोतियों का माला क्यों न हो। नफोस पोशाक के लिये नफीस सवारियाँ भी होना ही चाहिये, जरा सवारी हुई तो दस पाच पार दोस्त क्यों न हों, शय यान, पान, खेने देन सब उज्जल होने की ओर खपाल बौडा, तात्पर्य यह कि एक घात में भी जहा जरा सा तरहदारी और अच्छेपन को जगह दी गई कि कूर की आग हो जाती है, इसलिये किसी ने सच कहा है—

एक शोभा के लिए मन मारा ।

तो किया अनेक पीड़ा से निस्तारा ॥

"यावू, तुम समझते हो सदा दिन ही रहेगा रात कभी होहीगी नहीं । बड़े सेठ साहब कितनी मेहनत और उद्योग से तुम्हारे लिये कुयेर की सी सपदा सचित कर गये हैं, तुम्हारी सपूती इसी में है कि तुम उसे बनाये रहो । तुम कहोगे यह जात का दखि ब्राह्मण अमीरी की कदर जाने क्या । पर मैं कहता हूँ यह अमीरी किस काम की जिससे पीछे फकीरी भेलानी पड़े । सच है —

धनवन्तो के घर के द्वार ।

सब सुख आवैं वारम्बार ॥

जिसके होवै पैसा हांथ ।

उसका देवै सब कोई साथ ॥

उद्योगी के घर पर अडी ।

लक्ष्मी भूमै खडी खडी ॥

"अनी के पास सब आते हैं, यह किसी को दूढने नहीं जाता, कहा है —

प्यासा दूढै मोठा कूप ।

कूप न दूढै प्यासा भूप ॥

“बाबू, मैंने यावत् बुद्धियलौं दिय तुम्हें, चिताने में कोई बात उठा नहीं रख्या मानना न मानना तुम्हारे आधीन है, स्वाने को जरा इशारा, मूरख को कोडा सारा”

यह कह चन्दू उठ पडा हुआ। इसने वही नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। चन्दू आशीस दे घर की ओर चम्पत हुआ। कुछ दिन तक इसकी नसीहत का बाबू पर बड़ा असर रहा और ठीक र क्रम पर चला किया। अन्त को हजार मन साबुन से धोते रहो वही कोइले का कोइला।

नववां प्रस्ताव।

चार दिना की चांदनी फिर अंधियारा पास

चन्दू के उपदेश का असर बडे बाबू पर कुछ ऐसा हुआ कि उस दिन से यह सब सोहयत सगर्व से मुह मोड अपने काम में लग गया। सवेरे से दोपहर तक कोठी का सब काम देखता भालता था और दोपहर के बाद दो बजे से इलाकों का सब बन्दोबस्त करता था। बसूल और तहसील का एक एक मह खुद आप जाचता था। उजडे असामियों को दिलासा दे और उनकी यथोचित सहायता कर फिर से बसाता था और जो कारिन्दों की गफलत से सरहग हो गये थे उन्हें दवाने और फिर से अपने कब्जे में लाने की फिकर करता था। सुबह शाम जब इन सब कामों से फुरसत पाता था तो गृहस्त्री के सय इन्तिजाम करता था। भाई बिरादरी, नाता रिश्ता तथा हवेली में किस बात की ज़रूरत है इसकी सय सलाह और पूछ ताछ नित्य घडी आध घडी अपनी मासे

किया करता था। इसकी मा रमादेवी अब इसे सुचाल और काम पर देल, मनीमन चन्दू की बड़ी पहसानमन्द थी और जी से उसे असीसती थी। चन्दू का इन वातुओं से यद्यपि कोई लगाव न रह गया था पर रमादेवी से सब सरोकार इसका वैसे ही बना रहा जैसा हीरा चन्द से था। रमा बहुधा चन्दू को अपने घर बुलाती थी और कमी २ खुद आप उसके घर जाय इन वातुओं का सब हाल और रग ढग कह सुनाती थी। चन्दू पर रमा का पुत्र का सा भाव था यद्विक इन दोनों की कुचाल से दुःखी और निरास हो चन्दू को इसने अपना निज का पुत्र मान रक्खा था। रमा यद्यपि पढी लिखी न थी पर शील और उदारता में मानो साक्षात् शची देवी का अनुहार कर रही थी। पुरखिन और पुरनिया स्त्रियों के जितने सद्गुण हैं सब का एक उदाहरण बन रही थी। सरल और सीधी इतनी कि जब से अपने पति हीरा चन्द का प्रियोग हुआ तब से दिन रात में एक बार सूखा अन्न खाकर रह जाती थी। सब तरह के गहने, भाँति २ के कपड़ों के रहते भी केवल दो धोती से काम रचती थी। कितनी राड, बेवाओं और दीन दुखियाओं को, जिन्हें हीरा चन्द गुप्त रूप में कुछ न कुछ दिया करता था, यह बराबर अपनी निज की पूजी से, जो सेठ इसके लिये अलग कर गये थे, बराबर देती रही। शील और संकोच इसमें इतना था कि जो कोई इसे अपनी जरूरत पर आय घेरता था उसके साथ जहा तक बन पडता था कुछ न कुछ सलूक करने से नहीं चूकती थी। घर के इन्तजाम और गृहस्थी के सब काम काज में ऐसी दक्ष थी कि बहुधा जाति बिरादरी घाले भी काम पडने पर इससे आकर सलाह पूछते थे। बूढ़ो हो गई थी पर आधा घूघट सदा काढ़े रहती थी।

केवल नाम ही की रमा न थी गुण भी इसमें सब वैसेही थे जिससे इसका रमा यह नाम बहुत उचित मालूम होता था। प्रायः देखा जाता है कि सास और बहुओं में और यह यह में भी बहुत घम घनती है और इस न बनने में यहुधा हम उन कमयत सासों ही का सब दोष कहेंगे क्योंकि यह बेचारी का तो पहले पहल अपने मायके से ससुर के घर में आता मानो एक दुनिया को छोड़ दूसरी दुनिया में प्रवेश करना है। फिर से नये प्रकार की जिन्दगी में पाव रचना है, जिसे यहा कुछ दिनों तक जितनी बातें सब नई २ देख पडती हैं। जैसा कोई प्योरू जो पहले खब्दन्द मन भाफिक विचरा करता था विजहे में एकवारगी लाय बन्द कर दिया जाय, सब भाति पराधीन आजादगी को कभी ख्यार में भी दरखल नहीं, अन्तिम सीमा की लाज और शरम ऐसा यह के इसका आचर पकडे रहती है कि कभी एकदम के लिए भी छुट्टी नहीं दिया चाहती। इस दशा में जो चतुर सयानी घर की पुरखिनें हैं वे ऐसे ढंग से साम दाम के साथ नई बहुओं से घरतती हैं कि उन्हें किसी तरह का क्लेश न हो और सब भाति अपने घस की भी हो जाय। सास यदि फूहर ओर गवार दुई तो दोनों में दिन रात को कलकल और दाताकिटकिट हुआ करती है। इस हालत में यह घर नही वरन नरक का एक छोटा सा नमूना बन जाता है। इस रमा का क्या कहना है, यह तो मातो आक्षात् कोई देवी थी। खियों के दुर्गुणों की इस में छाया तक न आई थी। इसने अपनी दोनों बहुओं को ऐसे ढंग से रक्खा कि वे दोनों इसकी मलय 'स' भक्त और आशाकारिणी हुईं, और आपस में ऐसा मिलजुल कर रहती थीं कि बहन बहन मालूम होती थीं। यह कोई नहीं कह सकता कि ये

देवरात्री जैठानी हैं, और ससुरार के सुख के सामने मायके
 को ये दोनों विलकुल भूल गईं। पाठकजन, हम आशा करते हैं
 बाप लोगों को ऐसी ही रमा की सी घर की पुरखिन और दो
 सुशीला बहनों की सी वह मिलें जैसा 'सेठ होरा चन्द' और
 इन दोनों बाबुओं को मिली हैं।

दशवां प्रस्ताव ।

संगत ही गुन उपजै—संगत ही गुन जाय ।

हीरा चन्द के घर से दस घर के फासिले पर कुछ 'कच्चा
 कुछ पक्का एक मकान था, उसमें नन्द दास नाम का एक
 मनुष्य रहता था। यह कौन था और कब से यहाँ रहता था
 इसका कोई ठीक पता नहीं मालूम, पर इतना अलवत्ता पता
 लगता था कि यह हीरा चन्द का बिरादरी था और इन
 बाबुओं को भीया २ कहा करता था। इससे यह भी कुछ टोह
 लगती थी कि इसका बाबुओं के घराने से कोई दूर का रिश्ता
 भी रहा हो तो क्या अचरज ! बाबू के नौकर सब इसे 'नन्दू
 बाबू' कहा करते थे। बाप इसका शुरू में एक साधारण सी
 दूकान फपटे तथा दूसरी दूसरी देशी चीजों की करता हुआ निरा
 बकाल के सिवा किसी गिनती में न था। मसल है "तीन
 दिवाले सात", इस हिकमत को अमल में लाय कई चार
 दिवाला काढ और पीछे आधे तिहाई पर अपने देनदारों से
 मामिला कर लाख पचास की पूजी भी इसके लिये छोड
 गया था, इस लिये नन्दू अपना दिमाग इन बाबुओं से कुछ
 कम न रखता था। थोड़ी ऊर्दू जानता था; दूटी फूटी अङ्गरेजी

भी थोल लेता था, वहीं के दिहाती मदर्सों में पढा था, वहाँ एक छोटे मोटे इम्तिहान भी पास किये था; उस इतना ही कि मुग़्तारी और मुन्सिफी तक बकालत करने का इत्तियार हासिल था। पर कानूनी लियाकत में अपने आगे हाईकोर्ट के वकीलों को भी कुछ माल न गिनता था और साधारण लियाकत में तो बृहस्पति और शुक्राचार्य को भी अपना चला समझे बैठा था। तरहदारो और अमीरी में पूरा दम भरता था, पर उस तरह की तरहदारो और अमीरी नहीं कि गाँव का पैसा खो बैठे, बरन ऐसे ऐस लटकें सीखे था कि किसी ऐसे बड़े मालदार नये उभडे हुये को ढूँँ जिसे कोई रोकने टोकने वाला न हो, बरन कमसिनी ही में खुदमुखार बन बैठा हो। गितात अल्पज्ञता के कारण इतना मदान्ध और निर्विक था कि बहुधा अपने उछोरपन और सिफलापन के सब शिष्ट समाज में कई बार भरपूर दक्षिणा पा चुका था, तौमा अपने उछोरपन से यात्र नहीं आता था। यदि कोई समझदार और तमीज वाला होता तो आत्मगौरव न रहने के रजस समाज में फिर मुह न दिखलाता। पर गैरत को तो यह घोल कर पी बैठा था, इसके आख का पानी ढरक गया था। शर्म और हया कैसी होती है जानता ही न था। सब मानिये शिष्टसमाज और शिराकत के कलङ्क ऐसे ही लोग होते हैं जो जाहिरा में दिखलाने को ऐसा रंगे चूने चूना पोती कबर के माफिक बने ठने रहते हैं कि बस मानो रियासत के खम हैं; शिष्टता के स्रोत हैं, भलमनसाहत के नमूने हैं, पर भीतर पैठ कर देखो तो उन के घिनीने और मीले कामों से जो इतना घिनाता है कि पैसे का सपर्क कैसा, मुद्यमात्र अवला बन में महा प्रायश्चित लगता है। पैसे के सपर्क से जा

बचे हुये हैं उन पर ईश्वर की मानो बड़ी कृपा है। आखं
 कुथो, गाल फूले, चेचकरू, फोती गरदन, पस्तकद, किन्तु
 बनावट और सजावट में यह कामदेय से उतर कर दूसरा
 करना अपना ही कायम करता था। नन्दूही के समानशील
 लोगों का एक गण का गण था, जो महादेय के गण नन्दी,
 भृङ्गी के समान इसके आश्रित थे। उन सबों में एक इसका
 बड़ा विश्वासपात्र था, नाम इसका रघुनन्दन था पर नन्दू
 इसे रघू कहा करता। जाति का रघू ब्राह्मण था पर कदर्यता
 में अत्यन्त पामर महाशूद्र से भी गताङ्क केवल नामधारी
 ब्राह्मण था। नन्दू का ऐसा काम न होता था जिसमें रघू
 मौजूद न रहे, सब तो यों है कि नन्दू इस रघू का इतना
 आश्रित हो गया था कि जिना इसके नन्दू कुछ पुञ्ज सा
 रहता। तार्यरकी के समान नन्दू जिस काम में इसे प्रवृत्त
 कर देता था उसे पूरा होते जरा देर न लगती थी। वसन्ता
 जैसा उन वावुओं का परिचारक और मुसुपोरा खुशामदी
 था वैसा ही रघू नन्दू वावू का अनुचर था। अन्तर उसमें
 और इसमें केवल इतनाही था कि वसन्ता निपट निरक्षर कुन्दे-
 नातराश था, पर रघू को अक्षरों से भेंट थी, पर वही नाम-
 मात्र को, इतना कि जिससे हम इसे पढा लिखा या साक्षर
 नहीं कह सकते। वसन्ता निपट उजड़ू और जत्रन्य था, किन्तु
 रघू चालाकी में एकता और अमीरों का रूप पहचान उन्हें
 रूपा रखने के हुनर में बहुत प्रवीण था। जहा २ नन्दू आया
 जाया करता था, वहा २ रघू उसका पुछल्ला ही था, तब क्यों-
 कर सम्भवथा कि इसके चरण भी वहां न पधारें। इस द्वार से
 प्राय अनन्तपुर के छोटे बड़े रईस तथा आसपास के तबल्लुके
 दारों से इसकी भरपूर जान पहचान हो गई थी। यहा तक

कि इन अमीरों में यह "नन्दू के रघू" इस नाम से प्रसिद्ध था। रघू की भी अपनी तरहदारी और अन्दाज का दिमाक नन्दू बाबू से कुछ कम न था। घर में चाहे भूजी भाग न हूँ पर बाहर यह ऐसे अन्दाज से रहता था कि एक नया आदमी जो इसका सब कच्चा हाल न जानता हो इसे बड़ा असीर मान लेता।

नन्दू का बड़ा प्रेमी और दिली दोस्त एक तीसरा आदमी और था, इसके जन्म कर्म का सच्चा हाल किसी को मालूम न था पर नन्दू इसे हकीम साहब कहा करता था। हकीम साहब अपने को नवाजजादा बतलाते थे और अपनी पैदाइश का हाल बहुत छिपाते थे, पर जो असिल बात होती है वह किसी न किसी तरह अन्त को प्रगट हो ही जाती है। असलियत इसकी यों हे कि इसका चाप कन्दहार का रहने वाला नवाय शुजाउद्दौला के खुशामदी उमरावों में से था। इसने एक खानगी रख ली थी, उससे एक लडकी और एक लडका हुआ था। उपरान्त का हाल फिर कुछ मालूम नहीं कि यह लखनऊ से यहा क्योंकर आया और कब से यह अनन्तपुर में आ बसा। उस कन्दहारी अमीर की दूसरी औलाद इसकी हमशिरा को भी बरारर तलाश करते रहियेगा तो हमारे इसी फिस्ते में कहीं न कहीं पर अवश्य ही पा जायेगा। यह हकीम साहब बाहर तो घड़े तूमतडाग और लिफाके से रहते थे पर भीतर मिया के, सिचायें एक टूटी छाट और तीन सनहकी के कुछ न था। असल में इसका नाम क्या था कौन जाने पर सब लोगों में हकीम फीरोजबेग कन्दहारी अपने को मशहूर किये था। नन्दू इसका सिद्धसाधक था इस लिये जहा तक बन पड़ता छोटे घड़े सयों से इसकी बहुत सी

शरीफ कर कराय इसका प्रवेश उस ठौर करा देता था। यह
 भी इसकी इतनी शिफारिश करता था इसका भेद भी आप
 राज धरे चले चलिये खुली जायगा। इस बात के ताफ में
 भी यह न जानिये कय से था कि किसी न किसी तरह हीरा-
 चन्द के घराने में हकीम साहब का प्रवेश करावें। पर चन्दू
 के कारण जो देखते ही आदमी की नस नस पहचान जाता
 था, दूसरे हीरा चन्द की स्त्री रमादेवी के कारण, जिसे हकीमी
 दवा तथा मुसलमानों से किसी तरह का सम्पर्क रखने में
 पिन और चिढ़ थी, चन्दू की कुछ चलती न थी। हकीम भी
 यह केवल नाम ही का हकीम था, हिकमत मुतलक न पढ़ा
 था। मुसलमानों में यह एक चलन है कि जो लोग कुछ पढ़े
 लिखे होते हैं और उन्हें कहीं कुछ जीविका का डौल
 न खगा तो वे या तो हकीम बन जाते हैं या मौलवी हो लडकों
 को पढा अपना पेट पालते हैं। पढा लिया तो यह बहुत ही
 कम था, पर शीन काफ का ऐसा दुस्त और घातचीत ऐसी
 साफ करना था कि कहीं से पकड़ न हो सकती थी कि यह
 मूर्ख है। तस्यी एकदम, इसके हाथ से न छूटती थी। देखने
 वाले तो यही समझने थे कि हकीम साहब बड़े दीनदार और
 सुदापरस्त है पर इस तस्यी से कुछ और ही मतलब निक-
 लता था। तस्यी की गुरियों को जो वह जाहिरा में फेरा
 करता था सो मानो इमकी गिनती गिना रहा था कि इतनों
 को मैं अपनी चालाकी का शिकार बना चुका हूँ। तस्यी
 फेरते फेरते जो कभी कभी आप मूढ़ लेता था सो मानो एक
 ध्यान लगा कर यह सोचता था कि नये असामियों को अब
 क्योंकर चगुल में लाऊँ।

चन्दू यहूदा हकीम साहब की तारीफ बड़े धातू से किया

करता था और दो एक बार अपने साथ ले भी गया, पर खिवा चन्दगी सलाम और रामरमौअल के पहिले के माफिक मुचातिय अपनी ओर तथा हकीम की ओर उसे न देख मन्त मन मसोस कर रह जाता और चन्दू को सैकड़ो गालियाँ दिया करता कि इस खूसट के कारण मेरा जमा जमाया कार खाना सब उचटा जाता है। अस्तु एक रात को अचानक बाबू के पेट में ऐसा झूल उठा कि इसे किसी तरह कल न पडती थी। मारे पीडा के इसकी आघ्र निकली पडती थी दांत बैठे जाते थे, सब लोग घबडा गये। कई एक वैद्य और डाक्टर बुलाये गये, दवाइया भी चार २ मिनिट पर कई बार और कई किस्म की दी गई, पर दवाइया तो कोई सजीवन चूटी हइ नहीं कि गले के नीचे उतरते ही अमृत बन जाय। किन्तु अनीरी चोचलों में इतनी सीधर और धीरज कहा ? सब लोग दौड धूप में लगे हुए—जिसे जो सूभा-तदवीरें कर रहे थे कि हकीम जी को साथ लिये नन्दू भी आया और बोला "हकीम जी इस जून, आपके उस अर्क की जरूरत हे जो आप ने एक बार मुझे दिया था। जनाब, अर्क क्या है सजीवन मूल हे, देखिये कैसा तुल फुल, आपको, राहत होती है।" हकीम बोला "जावआली, मुझे क्या उजर हे अल्लाह ताला आपका सेहत दे।" इसके पहले नींद की दवा दी जा चुकी थी, आँखाँ आ रही थी कि इन्ही समय हकीम का वह अर्क भी दिया गया। अर्क पीने के बाद ही इसे नींद आ गई। रात भर खूब सोया किया।

दूसरे दिन नन्दू फिर आया और बाबू को चगा देख बोला "भैया, अब तक तो म जन्त किये था, कुछ नहीं कहता सुनता था, आपको वह पण्डित किसी समय ऐसा घोवा

गा। कि जन्म भर पछताते रहेंगे, ये अण्डित परिदित बदल होते हैं, ये हम लोगों को शाहस्तह जमात में कभी खर पाने लायक हो सकने हैं? उस अहमक ने तो फल अपनी जान ही ली थी, यह तों कहिये हकीम साहय फल आपक लिये ईश्वर हो गये, जान बचाया, नहीं तो कुछ का रह गया था? हकीम साहय बडे कायिल आदमी हैं, कहा तक उनकी तारीफ करू, अथतो आप से उनसे सरो-कार हो चला है दिनों दिन ज्यों ज्यों उनसे लगाव बढता गयगा आप उनकी सिफतों को पहचानेंगे। पर आपको सेहत तो गई, यकीन जानिये कल की रात हम लोगों की ऐसे रद्दबुद में घीती कि जन्म भर याद रहेगा। अच्छा तो चन्दगी अर दखसत होता ह दोपहर तक फिर आऊगा और हकीम साहय को भी लेता आऊगा।”

इसकी बातों का यावू पर कुछ ऐसा असर पडा कि उसी क्षम से इसही तदियत में चन्दू की ओर से बिन हो गई और जो कुछ काम इसमें सुधरादट और भलाई के आ चले थ सय बिदा होने लगे। हा धूर्त चीपटों की बन पडी, बसता भी इस समय तक जेल में छ महीने काट आ मिला, हा बायुओं को प्रेसुर की रान कर उन्हें अपना शिकार बनाने को पूरा अराज जमा होगया, सच है—“सकत ही गुन उपजत सद्गत ही गुन जाय”।

ग्यारहवां प्रस्ताव । अवलंबनाय दिनभर्तुरभून्न

अनन्तपुर की घनी बस्ती के
खण्ड का एक पक्का मकान था,
लम्बा चौड़ा तो न था पर चारों ओर
किता का बना था कि रहने वाले को
सकता था । इस मकान के आगे के
एक बसीह कमरा था जिसमें
ऐसी घुंटी हुई थीं मानो सग
कमरा इस ढङ्ग से आराम्ता
बदल करने से अङ्गरेजी
सका था । बाहर से
बराबर ऐसा ही पुरता,
बधमुहे मकान में यह
के पीछे पाव रखते ही
से नाक सड जाती थी ।

एत पहले कह आये =
काशी और मथुरा का
के जमाने में दिल्ली
गया । कुछ अर्से से इस
थे जिनकी दुखपरस्तों
धूम थी । यह कौन थे, कहा
आकर वसे थे कुछ मालूम नहए

किस घसीले से यहाँ अनन्तपुर ऐसे छोटे कस्बे में यह आ रहे । यद्यपि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, पेरिस आदि बड़े बड़े नगरों में ऐसे जीवों की कमती नहीं है, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, कश्मीरी, आरमीनी, अङ्गरेज इत्यादि हर एक कौम और जाति में एक से एक घड़ घड़ के गुणसूरती और सौन्दर्य में एकता हुंछ घाले सैकड़ों मौजूद हैं, पर यहा स्थानमष्ट के समान ऐसों का आ टिकना अल बत्ता एक अचरज या कौतुक था ! जो हो यहा के लोग इसके निश्चयत भान २ की कल्पनायें कर रहे थे । कोई लखनऊ की बेगमातों में इसे मानते थे, कोई कहते थे "नहीं नहीं यह दिल्ली के शाही घरानों में से हैं", किसी का क्याल था यह कश्मीर से आई है इत्यादि, और कोई इसे यहूदिन समझता था । घयक्रम इसका देखने में घाइस के ऊपर और पचोस के भीतरं मालूम होता था । गौर रग, हीना से दामिनी सी दमकती हुई इसके एक एक सुदील सांवे के दले अङ्गों पर सुन्दरापां बरस रहा था, यात चीत, घाल ढाल और घजेदारी से यह किसी अच्छे घराने की मालूम होती थी । इसके परदे में रहते न देख लोगों के मन में बट विश्वास जम गया था कि यह बम्बई की कोई पारसिन या यहूदिन है । थोडा उर्दू फारसी भी पढी थी इसलिए इसकी जयान साफ और शीत काफ डुरुस्त था । एक प्रकार की सजीदगी और शऊर इसके चेहरे की मिठास और सलौनापन के साथ ऐसी मिल जुल गई थी कि देखने वाले के लोचनों की इसे बार बार देखने की प्यास कभी बुझती ही न थी । यह अपने घने केश जालों में अलकावली की गूधन से तथा बिकसित-पुण्डरीक-नेत्रों से घेर्या और शरत् श्रुतुओं का अनुहार कर रही थी । घय सन्धि के कारण यह बासा

ग्यारहवां प्रस्ताव ।

अवलंबनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत क
सहस्रमपि—भारवि ।

अनन्तपुर की घनी बस्ती के बीचोबीच लंबे सड़क के
खण्ड का एक पक्का मकान था, यद्यपि यह मकान बड़ा
लम्बा चौड़ा तो न था पर चारों ओर से हवादार और ऐसे
किता का बना था कि रहने वाले को सब ऋतु में आराम पहुँच
सकता था । इस मकान के आगे के हिस्से में ऊँची पाटन का
एक बसीह कमरा था जिसकी दीवारें चटकीली सुफेदी पुती
ऐसी घुट्टी हुई थीं मानो सगमरमर की घनी हो । और यह
कमरा इस ढङ्ग से आरास्ता था कि इसमें थोड़ी ही अदल
बदल करने से अहरेजी ढग का उमदा झाड़ूकम भी हो
सका था । बाहर से देखने वाले समझते होंगे कि यह मकान
बराबर ऐसा ही पुरता, बसीह और सुयरा होगा किन्तु इस
बघमुहे मकान में यह कमरा ही सब की नाक था । इस कमरे
के पीछे पाव रखते ही ओकाई आने लगती थी और दुर्गन्धि
से नाक सड़ जाती थी ।

एमे पहले कह आये हैं हीरा चन्द के समय जो अनन्तपुर
काशी और मथुरा का एक उदाहरण था वह इन वातुओं
के जमाने में दिल्ली और लखनऊ का एक नमूना बन
गया । कुछ असें से इस मकान में एक ऐसे जीव आ टिके
थे जिनकी हुन्नपरस्तों के बीच उस समय अनन्तपुर में
धूम थी । यह कौन थे, कहा से आये थे और कब से यहाँ
आकर बसे थे कुछ मालूम नहीं, न यही कुछ पता लगता कि

किस बसीले से यहाँ अनन्तपुर ऐसे छोटे कस्बे में यह आ रहे । यद्यपि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, पेरिस आदि बड़े बड़े नगरों में ऐसे जीवों की कमती नहीं है; हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, कश्मीरी, आरमीनी, अङ्गरेज इत्यादि हर एक कौम और जाति में एक से एक घट्ट बढ के खयसूरती और सौन्दर्य में एकता हुआ वाले सैकड़ों मौजूद हैं, पर यहा स्थानभ्रष्ट के समान पैसों का था टिकना अल बत्ता एक अचरज या कौतुक था ! जो हो यहा के लोग इम्को निस्यत मान २ की कल्पनायें कर रहे थे । कोई लखनऊ की बेगमातों में इसे मानते थे, कोई कहते थे "नहीं नहीं यह दिल्ली के शाही घरानों में से है"; किसी का ख्याल था यह कश्मीर से आई है इत्यादि; और कोई इसे यहूदिन समझता था । धयकम इसका देखने में बाइस के ऊपर और पचीस के भीतर मालूम होता था । गौरा रंग, हीना से दामिनी सी दमकती हुई इसके एक एक छुडौल सांचे के ढले अङ्गों पर सुन्दरापा बरस रहा था, बात चीत, चाल ढाल और बजेदारी से यह किसी अच्छे घराने की मालूम होती थी । इसको परदे में रहते न देख लोगों के मन में बढ विश्वास जम गया था कि यह बम्बई की कोई पारसिन या यहूदिन है । थोडा उँट्टू फारसी भी पढ़ी थी इसलिए इसकी जवान साफ और शीन काफ दुस्त था । एक प्रकार की सजीदगी और शऊर इसके चेहरे की मिठास और सलौनापन के साथ ऐसी मिल जुल गई थी कि देखने वाले के लोचनों की इसे बार बार देखने की प्यास कभी बुझती ही न थी । यह अपने घने केश जालों में अलकावली की गूधन से तथा विकसित-पुण्डरीक-नेत्रों से घेरी और शरव् घृतुओं का झुझार कर रही थी । धय सन्धि के कारण यह बाला

बालभाष के पुण्य का ओर समझ मानो उसे छोड़ रही थी,
 और बिना किसी के दिये भी जो मन्मथ के आवेश के परवश
 हो गई सो मानो यौवन की धन पड़ी कि आपसे आप आ
 कर यह उसके हस्तगत हुई। इसकी चढती जयानी का जोश
 और लुनाई क्या थी मानो इसको-अपने प्रेम की सिद्धपोठ
 मानने वालों के आग्रह का एक ऐसा सुरमा था जिसे लगाते
 ही उनका मन इसकी ओर खिच आता था, अथवा यों
 कहिये-इसका सुन्दरापा उनके मन के आकर्षण का एक
 मोहन मन्त्र था, या नवयौवन-युवराज के विजय का कीर्ति
 स्तम्भ था, अथवा कुह्लार के समान ब्रह्मा के बार बार सृष्टि
 गढ़ने के अभ्यास का फल था, या रूप खजाने की रखवाली
 के लिए सिपाही था जिसे कामदेव यथेच्छाचारी राजा ने
 तैनात कर रक्खा था, या हर-नेत्र हुताश-वग्ध-अनङ्ग को फिर
 से जिलाने का सजीवन लटका था। निस्सन्देह यह युवती
 यौवनचन्द्रोदय की चादनी थी; रति रसामृत की महा नदी थी,
 कान्ति की कौमुदी थी; दमकती युति; सौदामिनी थी; अनङ्ग
 पहलवान के खेल की रगशाला थी। पद्मराग समान लाल
 और पतले होंठ, गोल उछी, ऊचा चौड़ा माथा, कुन्द की कली
 से दात, सीधी और बराबर उतार चढावदार सुग्गा के टोंट
 सी या तिल के पुष्प सी नासिका, गोल कपोल; कटीली और
 रसीली आँख, रेशम के लच्छे से मिर के बाल, सब मिल
 इसके चेहरे पर एक अनाखी छवि दरसा रहे थे।-यह अपने
 को हुमा बेगम के नाम से प्रसिद्ध-किये थी। यह हुमा केवल
 खूबसूरती और शऊर में एकता न थी-किन्तु गाना, यज्ञान
 इत्यादि कई तरह के हुनर में भी अपनी खानी न रखती थी।
 अनन्तपुर पेसे छोटे से कस्बे में तो इस कोकिलकण्ठी के

सौन्दर्य और गाने की धूम-थी। यद्यपि यदा के छोटे बड़े रहस सबी इसके मुश्ताक हो रहे थे किन्तु नन्दू तो इस पर तन मन से लट्टू था। अपने मामूली काम काज से फुरसत पाते ही घड़ा पहुँचता था। हुमा भी जो शऊर और ढगदारी में पल्ले दर्जे की चालाक थी, इसकी नस नस पहचान गई थी और इसे अपना खेलोना बनाये थी। अस्तु, उद्यपद से नीचे गिरते हुए मनुष्य को हजार २ तदधीर सब व्यर्थ होती है। सूर्य जब डूबने लगता है तो उसे हजार किरनें सब एक साथ घामती हैं पर घह नहीं रुकता, इसी तरह डूबते हुए इन धातुओं को सम्हाल रखने को चन्दू तधारमाने कितनी कितनी तदयार और यतन किये किन्तु एक भी कारगर न हुए, अन्त को विष की गाठ सी यह हुमा पेसी यहाँ आ बसी कि नन्दू सरीखे कुढगियों को अपने ढग पर इन धातुओं को दुलका लाने और गढ कर अपना ही सा बना देने के लिए मानो औजार हुई। मसल है "एक तो तितलीकी दूसरे चढी नीम" ये याबू लोग तो यों ही यौवन और धन के मद से अन्धे हो रहे थे। चन्दू सरीखे चतुर सयाने प्रवीण के उपदेश का बीज-लाख लाख तरह पर धलटी सीधी घात सुझाने से कभी कभी जम आता था तो खारो ओर से दु सङ्ग धोले के समान गिर उस टटके जमे हुए अङ्कुर का कहीं नाम और निशान भी न रहने देते थे। इसी दशा में रूप राशि हुमा ने अपने रूप का ऐसा गहरा जादू इन पर छोड़ा कि अबे फिर सम्हालने की कोई आश न रही। पर चन्दू इनकी ओर से सर्वथा निराश न हुआ था, यह इहे बारबार सीधी राह पर लाने की फिकिर में लगा हो रहा। सौ अजान में एक सुजान पर ध्यान जमाये हमारे पाठक यदि हमारे साथ ऐसेही धीरे धीरे चले चलेंगे तो अन्त को एक बार चन्दू को कृतकार्य होते पावेहींग।

वारहवां प्रस्ताव ।

धूर्त जंगद वञ्चते ।

अनन्तपुर में छोटे २ मुकद्दमों की काररवाई के लिये तीसरे दरजे की मुन्सिफी, तहसीली की कचहरी और पुलिस का एक थाना के सिवाय और कुछ न था । फौजदारी तथा दीवानों के जो कोई भारी और पेंचीदा मुकद्दमे होते थे सब वहा के जिले की कचहरी लखनऊ में भेज दिये जाते थे । वहा हाल में एक मुन्सिफ मुफर्रर होकर आये थे । ये कौन थे, क्या इनका मजहब था, कुछ पता न लगता था किन्तु अपने रा ढग से नेचरिये जाहिर होते थे । पोशाक इनकी विलकुल अङ्गरेजी वजा की थी, यहा तक कि फर्मी २ अङ्गरेजी टोपी (हैट) भी इस्त्यमाल करते थे, खाने पीने में भी इन्हें किसी तरह का परहेज न था, पैदाइश के तो हिन्दू ही थे पर यह नहीं मालूम कि इनकी क्या जाति थी । कोई इन्हें कश्मीर समझता था, कोई इस समय के तालीमयाफ़ा पढ़े लिखे लालाओं में मानता था । डाढी और चुटिया दोनों इनके न थी, रंग भी गोरा था इसलिये जियादह लोगों की यही राय थी कि यह कोई हाफकास्ट केरानी या यूरापियन हैं । पडित या बाबू की उपाधि से इन्हें बडी चिढ थी, यह साहब बतत और अपने नाम के आगे मिस्टर लिखने की चाल बहुत पसन्द करते थे और अपने दोन्तों से इस बात की ताकीद भी कर दी थी । ये मिजाज या बर्ताव में अपने को सुशिक्षितों के सिरमौर मानते थे, पर दिल पर सुशिक्षा का असर पढुवा हो इसका कहीं कुछ झेश भी न था । चात्ताकी में अच्छे खासे पढ़े थे,

दर्श पन्द्रह वर्ष मुन्सिफ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा बहुत नीचा खाकर यत्कि पिट पिटा कर भी आठो गाँठकुम्भैद हो चुके थे। भाइयों की नकल है कि दो सौ जूते खाकर भी इज्जत न गवाई। अपना रंग जमाने में तथा पाकेट गरम करने के फन में ये पूरे उस्ताद गुरुओं के भी गुरु थे, यत्कि यह ऐसे ही लोगों का कोल है कि ऐसा बलन्द इस्त्रियार हासिल कर जिसने दियानतदारी की और फूक फूक पाव रखता हुआ कोरे का कोसा बना रहा वह लुत्फे हराम है, ऐसे बेअकिल को खुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये। ऐसे लोग इसकी दो बम्रह कहते, हैं एक तो सियाह सुफैदी का कुल इस्त्रियार हाथ में आना दूसरे यमुकाबिले अगरेजों के जो छोटे से छोटे ओहदे पर डेढ हजार दो हजार महीने में तनख्वाह सहज में फटकारा करते हैं हम जो जन्म भर नौकरी कर लियाकत का जीहर दिखलाते हुये बराबर नेक नाम रह चुँड़े होते २ पाच सौ छ सौ महीने में पाने लायक समझे गये तो इतने में होता ही क्या है, इतना तो हमारे शराब कयाथ का खर्च है। ऐसे लोगों की, जो अपने गुनों में सब तरह भरे पूरे हैं, किसी नये जिले में पहुँचते ही पहिली घात सरिश्ते की जाच और भात हतों पर तन्दीही करना है। जिन्हें अपने काम में धर्क और जाच की कसौटी, में कसने पर खरे और बेलौस पाया उन्हें तबदील या मौकूफ करने की फिकिर में लगे। यह सब इस लिये करते हैं जिसमें ऊपर के हाकिमों को सबूत हो जाय कि यह दफ्तर की सफाई और अपने सरिश्ते का काम दुयस्त रकने में बडा निपुण है। निश्चय जानिये यह सब उसी से बन पड़ेगा जो कलम का जोरावर, अयान का तरार, और हिम्मत का दवग हो। जो ऐसा नहीं है, बोदा और लियाकत

मैं गाम है, यह पाकेट गरम करने में भी सदा डरा करेगा, उसे चालाकी के पुल जाने का ग्योफ हमेशा दामनगीर रहेगा। पहले वर्ष छ महीने भीतर भीतर उस जिले का हाल दरियाऊ करेंगे कि यहा कौन कौन रईस हैं, किस हैसियत के मुकद्दमे लडने वाले हैं, क्या उनकी चालचलन है, किस तरह की उनकी सोहयत है, क्या काम उनके यहा होता है इत्यादि इत्यादि। किसी छोटे वकील को अपने इजलास में बढा रखना भी एक ढग ऐसे लोगों का रहता है। अस्तु, हमारे उक्त मुन्सिफ साहब यह सब भरपूर समझ चुक गये थे और अब इस समय डेढ वर्ष के ऊपर यहा जमे इन्हें हो भी गया था। उनके जिले भर में जो जहा जैसे छोटे बडे तअल्लुकेदार, रईस तथा सेठ, साहूकार, महाजन थे सब इनकी निगाह पर चढ गये थे। उन्हीं में ये दोनों बाबुओं का भी सब कच्चा हाल दरियाऊ किये हुये यही ताक में थे कि किसी तरह कोई मुकद्दमा इन बाबुओं का दायर हो। दो एक मुलाकात भी उनकी इनसे हो चुकी थी, तोहफे और नजर भेंट की चीजे तो अवसर आया ही करती थीं। नन्दू जिसे बाबुओं ने थोडे दिनों से अपना मुसाराग्राम कर रक्खा था मुन्सिफ साहब तक बाबुओं की रसाई कर देने का एक जरिया था मसल है "चौरै चौर मौसियायत भाई"। उधर ये तो कुछ अपनी गों में थे कि यह बडे आला रईस के घर का गुर्गा है इसके जरिये मनमानता माल फट सकता है, उधर नन्दू अपनी ही घात में था कि पेयाशी का चस्का तो इमे लगाही है किसी तरह इस मरदूद को भी बाबुओं की भाति अपने चगुल में फसा लें। तब क्या हमी हम देख पडें और अवध में बडे से बडे नवाबों से मेरा कतवा और ठाठ कुछ कम न रहे।

कम यही हुमा बेगम इसके लिये भी काफी होगी । इसी नियत से यह अकसर किसी न किसी वहाँ लखनऊ में महीनों आकर टिका रहता था और मुन्सिफ साहब से रूठ जप्त भी खूब पैदा कर ली थी । यहाँ अपनी गैरहाजिरी में हकीम साहब से खूब ताकीद कर दिया था कि वह वायुओं के रहन सहन और और चाल चलन को अच्छी तरह चौकसी के साथ देखते रहें, क्योंकि उसे यह डर बनी ही रही कि कहीं ऐसा न हो कि चन्दू फिर कोई उपाय वायुओं को ढङ्ग पर लाने का कर गुजरें और उसका जमा जमाया सब खेत उचट जाय । इस बीच यहाँ हकीम साहब से बड़े वायू की बेहद विष्ट पिष्ट बढ़ गई, दिन दिन भर रात रात भर वायू गायब रहते थे । वायू, हकीम और नन्दू ये तीनों हुमा के ऐसे भक्त हो गये कि रातों दिन उसकी उपासना में लगे रहा करते थे, पर इसमें मुख्य उपासना वायू ही की थी, क्योंकि वे दोनों तो मानो भारे के टट्टू से थे, उपासना काण्ड का पूरा दारमदार केवल वायू ही पर आ लगा था । उधर छोटे वायू की एक निराली ही गुट्ट कायम हो गई और दोनों मिलकर आचारगी में शीवल दरजे की सार्टीफिकेट के बड़े उत्साही कैंडिडेट हो गये । हम ऊपर कह आये हैं, बड़े वायू को चिट्ठी पत्रियों पर दस्तखत करना भी बहुत जग्रे होता था । कोठी तथा इलाकों का सब काम मुनोम गुमाश्ते और कारिन्दों के हाथ में आ रहा । बहती गङ्गा में हाथ धोने की भाँति सबी अपना अपना घर करने लगे । नन्दू मालोमाल हो गया, क्योंकि हुमा की फरमाइशें इसी के जरिये मुँहिया की जाती थीं, और वहाँ का कुल हिसाब किताब सब इसी के सिपुर्द था । यद्यपि वायू की हुमा से रसार्द कराने का खास जरिया हकीम ही था पर इस

के हाथ केवल ढाक के तीन पत्ते रहे । कारण इसका यही था कि नन्दू जात का पक्काल रुपये को अपनी जिन्दगी का सर्वस्व मानने वाला महादृष्ट घनिया था, रुपये की कदर समझता था और यह इसका सिद्धान्त था कि मान, प्रतिष्ठा, बर्दार, शील, सकोच, मुलाहिजा सब रुपये के आधीन है, उसमें यदि हानि होती हो तो उमदा उमदा सिल्ले और बड़े बड़े गुन भार में झोंक दिये जाय —

अर्थोस्तु न केवलं—येनैकेन विना गुणास्तु
णलवप्राया. समस्ता इमे ॥

इधर हकीम एक तो मुसलमान, दूसरे पुराने समय की अमीरी की धू में पगा हुआ था, घर में भूजी भांग भी चाहे न हो पर जाहिरा नुमाइश नौवाबों ही की सी रहना चाहिये । हकीम साहब जो दाने दाने को मुहताजों के बाबू की बदौलत अमीरों के से सब ठाठवाट और पेश आराम में गर्क होगये । बाबुओं का सवाई डेहुडा खर्च हकीम साहब का होगया । जोड़ने को कौन कहे कर्जदार रहा किये । दूसरी बात हकीम साहब के यह भी जिहननशील थी कि हुमा को यह सब कमाई जो इस समय बाबू को फसा वेशुमार माल खीर रही हे वह भी तो आखिर मेरी ही है, क्योंकि सिवा मेरे हुमा के और दूसरा है कौन, हुमा भी जाहिरा में तो हकीम से कुछ सरोकार न रखती थी पर भीतर भीतर दोनों एक ही थे । दोनों के सूरत शकल में भी एक ऐसा मेल था कि ताडवाजों के लिए बहुत कुछ शक करने की गुजाइश थी । रमा अपने दोनों लडकों के कुटुम्ब से सोने का घर मिट्टी होते देख भीतर ही भीतर चूरचूर थी, पाना पीना तक छोड दिया और दुबला कर लफडी सी हो

गई थी। सौ सौ तदवीरों उनके सम्हालने की कर धकी, पर
 इन दोनों को राह पर आते न देख जहाँ तक हो सका कार-
 धार सब तोड़ बैठी। बाहर की दूकानें सब उठा दिया केवल
 उतना ही मात्र सब छोड़ा जिसे वह अपने आप सह्याल सकती
 थी और जिसे इसने देखा कि उठा देने से बड़े सेठ हीराचन्द
 के नाम की हलकाई होगी और उसके स्थापित ठौर ठौर धर्म
 शाला, पाठशाला, सदावर्त इत्यादि का खर्च न सट सकेगा।
 दूसरी बात रमा को यह भी मालूम हुई कि एक चन्दू को छोड़
 और जितने लोग पुराने पुराने इस घर के असरदत्त थे सबों ने,
 किसी को सम्हालने वाला न पाकर, जिससे, जहा, जितना,
 लूटते खाते बना मनमानता लूटा खाया, मानो ये लोग सेठ के
 घराने के रिगडने के लिए उलटा माला सा फेर रहे थे। चन्दू
 अलपत्ता बाबुओं को राह पर लाने की फिकिर में लगा ही रहा,
 छिपा छिपा रोज रोज का इन दोनों का सब रग ढग तजबीजा
 किया और अपने भरसक छल धल बल से न चूका, जय तब
 आकर, रमा को भी ढाढस दे जाता था। रमा का मन तो यद्यपि
 इन लडकों की ओर से बिलकुल मुक्त सा गया था पर यह अब
 तक हिम्मत बाधे था कि इन दोनों को राह पर एक दिन
 अग्रश्य ही लाऊगा, किन्तु जय तक ये गदहपचीसी के पार
 न होंगे और नई उमर का तकाजा उबर के समान चढा रहेगा
 तब तक इनका ढग से होना दुर्घट है। उसे विश्वास था कि
 यदि बड़े सेठ साहब की सुकृत की कमाई है और वे सिवाय
 भले कामों के मन से कमी किसी बुरी बात की ओर नहीं
 गये तो सम्भव नहीं कि उनकी औलाद पर उस भलाई का
 असर न पहुचे। यह कहावत कि, "बाढ़ें पूत पिता के धर्म"
 कमी उलटी होहीगी नहीं। चन्दू इसी फिकिर में था कि

किसी तरह नन्दू से बाबुओं का लगाव छूट जाता तो ए
 दोनों का ढंग से हो जाना कुछ कठिन न होता। इधर नन्दू
 भी मन में खूब समझ हुये था कि यह परिणत मेरा पका
 दुश्मन है। यह यहाँ का रहने वाला नहीं, एक अजनबी पर
 देशी ने ऐसा कदम जमा रक्खा है कि यही सेठानी बहू मा
 जो यह कहना है यही करनी हैं, नहीं तो जेसा मैंने बाबू का
 काठ का उरलू घनाय अपने ताबे में कर छोड़ा था वैसे ही
 रमा बहू को भी, जो, री की जाति है, मुट्टी में करते क्या
 लगता था ? इस लिये इस चन्दू से मेरे जी में हर तरह पर
 खटक है क्या जानिये यह एक दिन मेरी सब चालाकी बाबू
 के जी में नफ़स करा दे। पर देखा जायगा अब तो इस
 समय हीरा चन्द को कुल दौलत और राज पाट सब मेरे हाथ
 में है, अभी तो जल्द बाबू का यह नशा उतरने वाला है नहीं,
 तब तक मैं तो मैं कुल दौलत सेठ के घराने की खींच लूंगा,
 पीछे से ये दोनों लडके होश में आही के क्या करेंगे।

सच है, धूर्त और कुटिल लोगों की कार्रवाई का लखना
 यडाही दुर्घट है। कोई गिराला ही तत्व है जिससे वे गढ़े
 जाते हैं। ऐसी की जहरीली कुटिलनीति ने न जानिये कितनों
 का अपने पंच में ला जड पेड से उखाड डाला। इसलिये जो
 सुजान है वे ही उनकी कुटिलाई के दांव पंच से बचे हुये अपनी
 चतुराई के द्वारा दूसरों को भी अन्धियारे गड्ढे में गिरने से
 रोक लेने हैं।

तेरहवां प्रस्ताव ।

योऽर्थे शुचि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ।

यह हम अपने पाठकों को प्रगट कर चुके हैं कि हमारे इस उपन्यास के मुख्य नायक दोनों यावू बहुत सा फिजूल खर्च करते करते अर सकीर्णता में आने लगे । कहा है—“भक्ष्यमाणो निषघान ह्यीयते हिमवानपि” संचय न किया जाय और जब उसमें से ले ले कर खर्च हो तो कुयेर का खजाना भी नहीं ठहर सकता तब बड़े सेठ हीरा चन्द की सपति किननी और के दिन चलती । जिस तालाब में पानी का निकाम सय और से है, आना एक ओर से भी नहीं तो उसका पया ठिकाना । बानुओं को अर्थ खर्च का तरदुद हर जून रहा करता था, और इसी चिन्ता में रहते थे कि किसी तरह कहीं से कुछ रकम हाथ लगे, अस्तु ।

अनन्तपुर में नन्दू के मकान से सटा हुआ कथा पका एक दूसरा घर था, चूना पोती कयर के माफिक यह घर बाहर से तो बहुत ही रंगा चुगा और साफ था पर भीतर से निपट मैला गन्दा और सब ओर से गिरहर था । जब थोडा इस घर के रहने वाले का भी परिचय बिना बिये हमारे प्रबन्ध की शृङ्खला टूटती है । यह घर बाहर से लो ऐसा रंगा चुगा और भीतर श्मसान सा शून्यागार था इसका कुछ और ही मतलब था और वह मतलब आपको तभी मालम होगा जब आप मालिक मकान से पूरे परिचित हो जायेंगे । मालिक मकान महाशय को आप कोई साधारण जन न

रखिये । फितनाअङ्ग्रेजी और उस्तादी में यह बड़े २ गुराओं का भी गुरु था । अनन्तपुर के सब लोग इसे उस्ताद जो कहा करते थे । हमारे पढने वाले नन्दू के चाल चलन और शील स्वभावसे भरेपूर परिचित हो चुके हैं, पर वह चालाकीमें इसक पसगे में भी न था । नन्दू इसे चचा कहा भी करता था । सकलगुणघरिष्ठ हकीकत में यह चचा कहलाने लायक था । नाम इसका बुद्धदास था और जैनधर्म पालन में अपने को बड़े बड़े श्रावकों का भी आचार्य समझता था । खास लेने और छोडने में जीवहिंसा न हो, इसलिए रातों दिन मुह पर ढाठा बाधे रहता था, पर चित्त में कहीं दया का लेश भी न था । पानी चार बार छान कर पीता था पर दूसरे की थाती समूची की समूची निगल जाता था, डकार तक न आती थी । दिन में चार बार मन्दिर में जाता था पर मन से यही विसूरा करता था कि किस भाँति कहीं से विनामेहनत, बेतरद्दुद, डले का डला रुपया हाथ लग जाय । साथही यह भी याद रखन लायक है कि आप निवन्सी थे, आगे पीछे आपके कोई न था, कृपण इतने थे कि चार रुपये महीने में गुजर करते थे । जाहिरा में दस पाच रुपया पास रख घडी दो घडी के लिए टाट बिछाय बाजार में जा बैठते थे और पैसों की शराफी अपना पेशा प्रगट किये थे, पर छिपी आमदनी इसकी कई तरह की ऐसी थी कि उसका हाल कोई २ बिरले ही जानते थे । अनन्तपुर में तो नन्दू ऐसे दोही एक इसके चेले थे, किन्तु लखनऊ के चालाक और उस्तादों में इसकी धूम थी । मेख द्विपाये दो एक परदेशी इसके फन के मुश्ताक टिके ही रहते थे । यह अपने को कीमियागर प्रसिद्ध किये था, पढ़ा लिखा एक अक्षर न था पर खुशनवीसी में ईश्वर की देन उस पर थी ।

माने इस फन को यह मा के पेट से लै उतरा था। किसी भाषा का कौसा ही बदखत या युशखत लेख हो यंह जैसे का तैसा उतार देता था। दस रुपये सैकडा इसकी उजरत मुकरर थी, अर्थात् दस्तावेज घगैरह सौ रुपये का हो तो उसकी घनवाई यह दस रुपया लेता था, दो सौ का होतो बीस, योंही सौ सौ पर दस बढ़ता जाता था। और बहुत से फन इसे याद थे पर उन सबों के जिकिर से हमें यहां कोई प्रयोजन नहीं हे। बुद्ध दास शांकीन और तरहदारों में भी अपना शौघल दरजा मानता था। उमर इसकी ४० के ऊपर आ गई थी, दांत मुह पर एक भी बाकी न बचे थे, तौमी पोपले और खोडहे मुह में पान की यीडिया जमाय, सुरमे की घजियों से आख रंग, केसरिया चन्दन का एक छोटा सा बिन्दा माथे पर लगाय, चुननदार बालावरअगा पहन, लखनऊ के थारीक काम की टोपी या कभी कभी लट्टूदार पगडी बाध जब बाहर निकलता था तो मानोज्ञ का कधैया ही अपने को समझता था। होठ बडे मोटे, रंग ऐसा काला मानों हवश देश की पैदाइश का कोई आदमी हो, आख घुच्ची सी, गाल घुचका, डील ठंगना, बाल खिचडी उस पर जुल्फ, गरदन कोतह, मुह घोडे का सा लम्बा, शैतानी और फसाद तथा काहयापन इसके एक २ अंग से बरसता था। यह विप की गाठ अनन्तपुर का रहने वाला ७ था; थोडे दिनों से यहां आकर बसा था। कहा है—“समानशीलयसनेपु सख्यम्” नन्दू और यह दोनों एक से शील सुभाव के थे और नन्दू की इससे पटती भी खूब थी इसलिये अचरज क्या कि उसी ने इसे कहीं बाहर से बुला कर अपने घर के पास ही टिका लिया था। इसे नन्दू चचा कहता था इससे मालूम होता है

कदाचित् कोई दूर का रिश्ता भी इससे रहा हो। नन्दू भी जो चालाकी में पकता था, इस घात से इसे और टिकाये था कि इसके दूसरा कोई ओर था ही नहीं अन्त-को इस बड़ कृपण का धन सिवा मेरे कौन पा सकता है ! जो हो एक रात को नन्दू ने आकर इसका किवाड खटखटाया, इसने चुपके से आय किवाड खोल दिया, दोनों भीतर चले गये और किवाड धन्द कर लिया। नन्दू बोला—“चचा, बड़े बाबू ने आज आप को उसी मामिले के लिए याद किया है—आपकी उजरत फौडी ऊपर दिलवाऊंगा”। यह बोला “उजरत की कौन सी बात है मुझे तुम से या बाबू से किसी तरह पर इनकार नहीं है”।

चौदहवां प्रस्ताव ।

वह वह मरै बैलवा बैठे खायं तुरङ्ग ।

पाठक जन, आप लोगों को याद होगा हमारे इस किस्से के पहले प्रस्ताव का पहिला दृश्य एक घुडसवार, था जो आधी रात के समय कागज का एक पुलिन्दा लिए आया था और दरवाजे का फाटक खुलवाय पुलिन्दा दे चला गया था। हमारे पढ़नेवालों को अवश्य इस बात के जानने की रुचि हुई होगी कि यह कागज का पुलिन्दा क्या था और क्यों ऐसा तावडतोड मगाया गया ।

हम ऊपर कह आये हैं सेठ हीरा चन्द का अनन्तपुर में एक बहुत पुराना घराना था। हीरा चन्द से पाच पुश्त पहले इसके पुरखों में से एक कोई मानिकचन्द नाम का, घट से

पाच कोस पर अपने ही नाम का एक गाव बसाय, बाग, बागीचा, कुआ, तालाब, रमने इत्यादि कई एक रमणीक सजावटों से इस स्थान को अत्यन्त मन रमाने वाला कर आप वहीं जाय रहने भी लगा। उपरान्त इसके कई एक लडके, लडकिया, पोते, परपोते हुए और यह सब भात रजा पुजा होकर ससार में भाग्यवानी की सीमा को पहुच गया था, बल्कि बीच में होरा चन्द के घराने की बड़ी अयतरी आ गई थी, यह ता हीरा चन्द ही ऐसा भाग्यवान् पुरुष हुआ कि पहले से भी अधिक इस घराने को चमका दिया। मानिकपुर वाले सेठों का तो कोई नाम भी न जानता था पर हीरा चन्द का विमल यश चहूँ ओर छाया था। जिस समय का हाल मैं लिखना हूँ उस समय मानिक चन्द के घराने में बची बचाई, पुरानी दौलत तो थोड़ी बहुत रह गई थी, पर उसका सुख बिलसने वाला कोई न रहा। ७० वर्ष का एक बुद्धा बच रहा, जसे, किसी हरे भरे बाग के उजड जाने पर उसमें कटीले पेड का एक ठूठ बच रहे। मानिकपुर भी उजड कर कस्ये से एक छोटा सा पचास घर का पुरवा रह गया, सिवाय इस बुद्धे के मानिक चन्द की लडकियों के सन्तान में भी एक आदमी बच रहा था। नाम इसका मिट्टू मल, मानो नहसत और दरिद्रता का एक पुतला था। इस बुद्धे के घर से अलग एक दूसरे कच्चे मकान में यह रहा करता था, शकल से महा दिहाती ग्रामीण मालूम होता था; न केवल सूरत ही शकल से यह दिहाती था, वरन शऊर और ढग भी इसके सब दिहातियों के से थे। दस पांच विगहे की खेती करता था और वही इसकी आजीविका थी। कभी २ अर्थपिशाच यह बुद्धा भी इसकी कुछ सहायता कर देता था। रिश्ते में यह उसका, भानजा

लगता था। नाम इस पञ्चवित्त रूपण बुद्धे का धनदास था।
 धन दास कुछ तो बुढापे के कारण, जब कि और सब इन्द्रिया
 शिथिल हो केवल वृष्णा और लोभ ही को विशेष बढ़ा देती
 हैं और कुछ इस कारण से भी कि इस की बारी फुलवारी
 बिलकुल उजड गई थी ठठ सा अकेला आप ही बच रहा था
 लडके, पोते, नाती, अपनी स्त्री तक को इसने फूक तापा था
 इसलिये इसका जी सब भाति बुझ गया था और कभी किस
 बात के लिये हँसिला ही नहीं उमडता था, साप सा खाः
 बिछाये उसी सन्दूक के पास पडा रहता था, जिसमें इसके
 सब कागज, पत्र, रुपया, पैसा, नोट इत्यादि रक्खे हुये थे
 सिवाय थोडी सी पुराने फैशन को फारसी के और कुछ पढ
 लिखा न था, न इसे कभी किसी सभ्य समाज में शरीक होने
 या अच्छे सभ्य लोगों से मिलने का मौका मिला था। बेईमानी
 या इमानदारी से जैसे बन पडे केवल रुपया जमा होता चला
 जाय, इसी को यह बडी पण्डितार्ई, बडो चतुरार्ई, बडा धर्म
 संभके हुये था। इस दशा में य को भाव कहा से
 आ सकता है। न जानिये थाती पचा
 डाला था इन्हीं कारणों की पदवी
 बहुत सुप्रदित बोध होत था,
 एक एक अग पुलित और उ करता
 था।

१॥
 य
 पड

इस लिये कि जल्द चलकर जो उसके पास माल मताले है उसे जैसे हो अपने कज्जे में लावें। चलती धार नन्दू भी इन के साथ हो लिया। दोनों का चोलीदामन का साथ था, मला यह फ्यों फेर यातुओं को छोड़ अपनी चालाकी से चूकता और यावू को भी इसके बिना कहा कल पड सकती थी। दो एक दिन तो धन दास बहुत ही बुरी हालत में रहा, लोग अगुलियों घड़ी और लहमा गिन रहे थे कि इसकी हालत कुछ सुधरने लगी; दो तीन दिन तो पडा रहा उपरान्त योला भी और कुछ खाने के लिये इसने इच्छा प्रगट की। यावू इसे खगा होते देख मन में बडे उदास हुये, सब उम्मीदें जाती रही थीं जो बात सोंच रखता था एक भी न हो सकी; पर ऊपर से ऐसी लतलो पत्तो और चुना चुनी करते जाते थे कि धन दास को किसी तरह पर यह विश्वास न हुआ कि यह मेरा अनिष्ट सोंच रहा है और मेरे साथ कुछ खेल खेला चाहता है। इसके बाद भी अपनी दुरमिसन्धि छिपाने को यावू दो एक दिन बहा रह कर धन दास से बिदा हुये और नन्दू को बहा ही छोड गये। भीतर भीतर इशारा तो कुछ और ही था पर ऊपर से धन दास के सामने नन्दू से कहा "नन्दू यावू, मैं तो अब आऊंगा पर तुम चचा साहय की अच्छी तरह फिकर रखना। देखो, इन्हे किसी तरह की तकलीफ न हो। इनके पथ्य और इलाज इत्यादि की तदबीर रचना। और धन दास से योला "चाचा साहय क्या करूँ मैं बडा लाचार हूँ मेरे न रहने से कोठी तथा इलाकों का सब फारवार बन्द होगा। मैं नन्दू यावू को छोडे जाता हूँ, यह मेरे बडे रफीक हैं, आपकी सेवा टहल की सब फिकर रखेंगे और किसी तरह की तकलीफ आपको न होने पावेगी। मैं धुडसवार एक हलकारे को छोडे जाता हूँ जयभापको

लगता था। नाम इस यज्ञविद्यारूपण बुद्धे या धनदास था। धन दास कुछ तो बुदापे के कारण, जब कि और सब इन्द्रिया शिथिल हो केवल वृष्णा और स्त्रोम ही को विशेष 'बढा देता है और कुछ इस कारण से भी कि इस की बारी फुलवारा विलकुल उजड गई थी ठूठ सा अकेला आप ही बच रहा था, लडके, पोते, नाती, अपनी स्त्री तक को इसने फूक तापा था, इसलिये इसका जी सत्र भाति धुमक गया था और कभी किसी बात के लिये हँसिला हो नहीं उमडता था, साप सा खाट बिछाये उसी सन्दूक के पास पडा रहता था, जिसमें इसके सब कागज, पत्र, रुपया, पैसा, नोट इत्यादि रखे हुये थे। सिवाय थोडी सी पुराने फैशन को फारसी के और कुछ पढा लिखा न था, न इसे कभी किसी सम्य समाज में शरीक होने या अच्छे सम्य लोगों से मिलने का मौका मिला था। बेइमानी या इमानदारी से जैसे बन पडे केवल रुपया जमा होता चला जाय, इसी को यह बडी परिडताई, बडी चतुराई, बडा धर्म समझे हुये था। इस दशा में मनुष्य को उदार भाव कहा से आ सकता है। न जानिये फितनों की तो इसने याती पना डाला था इन्हीं कारणों से इसके लिये अर्थपिशाच की पदवी बहुत सुप्रदित बोध होती है। सत्तर वर्ष का हो ही गया था, एक एक अंग पलित और जीर्ण हो चले थे, रोगग्रमित रहा करता था। अचानक एक साथ ऐसा बीमार हो गया कि विलकुल खाट से लग गया और मालूम होता था कि दो ही 'एक दिन में इसका बारा न्यारा हुआ चाहता है। इसकी बीमारी की खबर याबुओं को पहुची। घरर पाते ही इन दोनों के जी में खलबली पडी। इस लिये नहीं कि बुद्धा बीमार है चल्कर उसकी कुछ सेवा दहल करे, या दयादारु की कुछ फिकर करे, बल्कि

इस लिये कि जल्द चलकर जो उसके पास माल मताल है उसे जैसे ही अपने कज्जे में लायें। चलती वार नन्दू भी इन के साथ ही लिया। दोनों का चोलीदामन का साथ था, भला यह क्यों कर बाबुओं को छोड़ अपनी घालाकी से चूफता और बाबू को भी इसके दिना कहा कल पड संकती थी। दो एक दिन तो धन दास बहुत ही बुरी हालत में रहा, लोग अगुलियों घड़ी और लहमा गिन रहे थे कि इसकी हालत कुछ सुधरने लगी, दो तीन दिन तो पडा रहा उपरान्त बोला भी और कुछ घाने के लिये इसने इच्छा प्रगट की। बाबू इसे चगा होते देख मन में बडे उदास हुये, सब उम्मीदें जाती रही और जो बात सोंच रखी था एक भी न हो सकी, पर ऊपर से पेसी लालो पत्तो और चुना चुनी करते जाते थे कि धन दास को किसी तरह पर यह विश्वास न हुआ कि यह मेरा अनिष्ट सोंच रहा है और मेरे साथ कुछ खेल खेला चाहता है। इसके बाद भी अपनी दुरमिस्त्रिधि छिपाने को बाबू दो एक दिन बहा रह कर धन दामन से बिदा हुये और नन्दू को घहाही छोड गये। भीतर भीतर इशारा तो कुछ और ही था पर ऊपर से धन दास के सामने नन्दू से कहा "नन्दू बाबू, मैं तो अब जाऊंगा पर तुम चचा साहब की अच्छी तरह फिकर रखना। देखो, इन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो। इनके पथ्य और इलाज इत्यादि की तदवीर रखना। और धन दास से बोला "चाचा साहब क्या करूँ मैं बडा लचार हूँ मेरे न रहने से कोठी तथा इलाकों का सब कारबार बन्द होगा। मैं नन्दू बाबू को छोडे जाता हूँ, यह मेरे बडे रफ़ीक हैं, आपकी सेवा टहल की सब फिकर रखेंगे और किसी तरह की तकलीफ आपको न होने पावेगी। मैं घुडसवार एक इलकारे को छोडे जाता हूँ जब आपको

फिसी बात की जरूरत आ-पडे तुरन्त इसे भेज मुझे इत्तला, देना" । यह कह बुढ़े को सलाम कर यह घहा से विदा हुआ।

नन्दू जो चालाकी में पूरा उस्ताद था और अपने को इसमें एकता समझता था ऐसे ढंग से रहा और ऐसी सेवा टहल कि फि धन दास का यह बडा विश्वसित हो गया यहा तक की इसने अपनी ताली कुञ्जी सब इसके सिपुर्द कर रक्खा । अपने पुराने नौकरों की भी बात न मान जो यह कहता वैसाही धन दास करने लगा । एक तो बूढा था दूसरे, बीमारी के कारण चिरचिरा हो गया था नन्दू को यह एक बड़ी हिकमत हाथ लगी कि जब इसे किसी पर झुक्लाते और चिरचिराते देखता तो इशियालक देने की भाति दो एक कोई ऐसी बात कह देता कि इसकी चिरचिराहट और चोगुनो-बढ जाती थी । जिसपर यह झुक्ला उठता था उसकी मानो शामत आई, और इस झुक्लाहट में वह चिल्लाता था, रोने लगता था यहा तक कि मूड भी पीट डालता था । ऐसे मौके पर नन्दू को अपनी सेर-स्वाही जाहिर करने का मौका मिलता था । निदान यह बुढ़ा विलकुल सठिया गया । होरहवास भी दुरस्त न रहते थे । मृत्यु के दिन समीप होने के जितने लक्षण होने चाहिये सब इसमें आ गये । इस प्रकार के कृपण कदर्य-जीवन से जीने वालों का यही तो परिणाम होता है, जो मानो आदमी के भले बुरे होने की बड़ी भारी-परख है । सुछती मनुष्य की मरण अवस्था ऐसी सुख की होती है कि किसी को मालूम नहीं होता कि कब-उसके चोता से जान निकल गई, शानन फानन पलक भजते भजते शरीर से उसके प्राण की यात्रा होती है । वही दुष्कृती, जैसा यह बुढ़ा था, महीनों तक पड़े अोक यातना और यत्रणा भोगते हैं पर प्राणप्रियोग शरीर से नहीं होता ।

एक दिन रात को यह फहरता फहरता सो गया और इसके सब पुराने नौकर भी नींद के घश हो गये कि नन्दू ने ताली का गुच्छा, जो इसकी तकिया के नीचे रफमा रहता था, धीरे से खींच वह सन्दूक जिसे धन दास अपना प्राण समझता था शाहिस्ते से खाल, कागज का पुलिन्दा उसमें से निकाल लिया और सन्दूक फिर बन्द कर ताली वैसे ही तकिया के नीचे रख दिया। इन्होंने पुलिन्दा उसी महत्कारों को दिया और कहा "तुम अभी जाकर इस पुलिन्दे को बाबू साहब को दे आओ, पर खबरदार होशियार रहना, यह बड़े काम का कागज है, इसमें से कोई भी गिर जायगा तो बड़ा हर्ज होगा।" बहत्कारा सलाम कर पुलिन्दे को अपनी कमर में दम खाना हुआ। नन्दू भी जाकर चुपके सो रहा, पर अपनी इस अभिसन्धि में वृत्तकार्य होने की सुशी में दर तक इन्हे नींद न आई, सोचता था "तालों की जायदात मालमताल अब मेरे बाबुओं को बेखरखने दायें लग जायगी, बाबू से खहारम मेरा ठहर गया ही है, तब क्या हमीहमें कुछ दिनों में देख पढेंगे। चहारम क्या यह बिलकुल माल में अपना ही समझना है, क्योंकि बाबुओं को तो मैंने अपने जाल में फना ही रफया है। बाबू के पास जो कुछ है उसके नव के कर्ता धर्ता सिवाय मेरे दूसरा है कौन। हा! हा! हा! मैं भी अपने फन में क्या ही बस्ताद है, कैसी अपनी ढाक जमा रफयो है कि अब बाबू के दरबार में भहों में है। उस उजड़ परिडित चन्दू ने हर चन्द चाहा, कितना ही फटफटाया, पर उसकी एक भां दात न गली। मय तरह पर बाबुओं को मने अपनी मूठी में फना तो लिया। छिः! यह परडित भी अहमकों की जमात का एक नमूना देख पडा, बदतमीजी की यह बानगी है मानो शऊर

पन्द्रहवां प्रस्ताव ।

“नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।

शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ अमुः

। अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता जैसा पृथ्वी में धीजें बो देने से उसका फल देने वाले को थोड़े ही दिन के उपरान्त मिलने लगता है, किन्तु अधर्म का परिपाक धीरे धीरे पलटा धाय जड़ पेड़ से अधर्मी का उन्धेद कर देता है ।

। अनन्तपुर से श्रीधर्मिल पर सेठ हीरा चन्द का बनाया हुआ नन्दन-उद्यान नाम का एक बाग है । हीरा चन्द के समय यह बाग सच ही नन्दन वन की शोभा रखता था । सब ऋतु के फल फूल इसमें भरपूर फलते फूलते थे । ठौर ठौर सुहावनी लता और कुछ घुन्दावन की शोभा का अनुहार करते थे । सक्रममरु की रविशो पर जगह जगह फौहारे जेठ प्रैसाय की तपन में सावन भादों का अगुन्द बरसा रहे थे । परु और इस बाग के बड़ी लम्बी चौड़ी चारह दुआरी थी, जिसमें हीरा चन्द नित्य अपने काम काज से सुचित हो सन्ध्या को यहां आते थे । परिडित, साधु अभ्यागत तथा गुणी लोगों से यहीं मिलते थे और अपने चित्त के अनुसार सबों का थोडा या बहुत जो कुछ हो सकता सत्कार सन्मान करते थे । अन्तु, हीरा चन्द की बात उन्हीं के साथ गद् अथ उसको गद् गीत के समान फिर फिर गाने से लाभ क्या ?

और समझ के घग्ने पर बड़ा भारी पत्थर का ढोंका रख दिया गया हो। खूबी यह कि फौड़ी फौड़ी-मात हो रहा है फिर भी अथ तक अपनी शरारत से बाज नहीं आता। मैं भी मौका तजधीज रहा हूँ बचा को ऐसा फंसाऊंगा कि, अथ की बार जड़ पेड़ से उखाड़ डालूंगा और अनन्तपुर में, कहीं इसका निशान भी न रह जायगा। मैंने एक बार पहले भी सटूफ का मोला था ताकि देखू इसमें क्या है, सिचाय और चीजों, के उस पुलिन्दे को भी पाया, जिसमें पचास हजार के कई किता सिफ़ नोट के उसमें थे। दश हजार का एक किता तो मैंने अपने लिए अलग उड़ा रक्खा। और भी कई एक दस्तावेज उसमें हैं। यहाँ से चल कर मैं सबों को ठीक करूंगा। इसी लिए तो जुद्ध दास को अपने घर के पास ही टिका रक्खा है और सब तरह की नाजरदारी उसकी उठा रहा हूँ। खास कर उस बसीबत को दुखस्त करना है जिसमें बुड्ढे ने मिट्टू मल के लिए कुछ इशारा कर दिया है। मिट्टू ऐसे खूसट देहकानी को इतनी कसीर रकम मिलकर क्या होगी, इसे तो हम लोगों के हाथ में आना चाहिये। बाबुओं का रग ढग देव घर को सब रकम बड़ी सिठानी ने दाव रक्खा, दोनों बाबू मा के मरने के घादे पर कर्ज ले लेकर इन दिनों अपना काम चला रहे हैं। अब इतनी कसीर रकम एक साथ मिल जाने से कुछ दिनों के लिए सुबीता हो गया। खैर देखा जायगा इसमें शक नहीं आज मैं महीनों की कोशिश और तदबीर के घाद आदिर कामयाब हुआ।" इतने में उसे नौद आ गई और यह सो गया। -

पन्द्रहवाँ प्रस्ताव

“नाधर्मश्चरितो, लोकैः सद्यः फलति गौरिव ।

शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ मनुः”

अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता जैसा पृथ्वी में धीज बों देने से उसका फल घाने वाले को थोड़े ही दिन के उपरान्त मिलने लगता है। किन्तु अधर्म का परिपाक धीरे धीरे पलटा घाय जड़ पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है।

अनन्तपुर से आध मील पर सैठ हीरा चन्द का बनाया हुआ नन्दन-उद्यान नाम का एक बाग है। हीरा चन्द के समय यह बाग सच ही नन्दन घन की शोभा रखता था। सब ऋतु का फल फूल इसमें भरपूर फलते फूलते थे। ठीर ठीर सुहावनी लता और कुज चून्दावन की शोभा का अनुहार करते थे। सङ्गमर की रजिशा पर जगह जगह फीहारे जेठ रेसान्ध को तपन में सावन भादों का अणन्द घरसा रहे थे। पक और इस बाग के बड़ी लम्बी चौड़ी चारहें दुआरी थी, जिसमें हीरा चन्द नित्य अपने काम काज से सुचित हो सन्ध्या को यहां आते थे। पण्डित, साधु, अध्यागत तथा गुणी लोगों से यहीं मिलते थे और अपने चित्त के अनुमार सबों का थोड़ा या बहुत जो कुछ हो सकता सत्कार सम्मान करते थे। अन्तु, हीरा चन्द की बात उन्हीं के साथ गई अब उसकी गई गीत के समान फिर फिर गाने से लाभ क्या ?

आगे के दिग्गज पाछे गये, हरि से कियो न हेत,
अब पछिताये क्या भया चिड़िया चुन गई खेत

जिस फलवन्त धरती में अमृत रस वाले दासफल और
केसर उपजते थे उसी में काल पाय ऊँठकटारे और अनेक
कटले पेड़ जम आये तो इसमें अचरज की कौन सी बात है !
काल चक्र की गति सदा एक सी रहे तो यह चक्र क्यों फटा
जाय—“नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।”

“गतः सकालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म वल्लिपु
उदुम्बरफलेनापि स्पृहयामोऽधुना चयम्”

बरसात का आरम्भ है। रिमझिम रिमझिम लगातार पानी
की छोटी छोटी फूँही श्रीष्मसन्तापतापित वसुधा की सुधादान
के समान होने लगी। काली काली घटायें सब और उमड़ उमड़
बरसने लगीं। मानो नववारिद धन उपजन स्वावर-जगम जीव
जन्तु मात्र को बरसात का नया पानी है जीवनदान से जितने
दानी और वदान्य जगत् में विख्यात हैं उनमें अपना शीवल
हरजा कायम करने लगे ? या यों कहिये कि ये बादल जालिम
कमयल्लन जेठ माह के जुलम से तडपते, हापते, पानी पानी पुका
रने जीवों को देख दया से पिघल खिन्न हो आसू वहाने लगे।
नदी नाले उमड़ उमड़ अपना नियमित मार्ग छोड़ वैसा ही
स्वतन्त्र बहने लगे जैसा हमारे इस कथानक के मुख्य नायक
दोनों पात्र बेरोकटोक विनेक के मार्ग को छोड़, शर्म और
हया से मुह मोड़, दुस्सङ्ग के प्रवाह में बह निकले। विमल
बल वाले स्वच्छ सरोवर जिनमें पहिले हस, सारस, चक्रवाक

कल्पवृक्षि करते हुए बिचरते थे, उनके मटीले गदले पानी में अब मेंढक वैसे ही टर टर करने लगे जैसा इन वायुओं के दरवार में, जहा पहिले चन्द्र सा मतिमान् सुजान महामान्य था, वहा नन्दू तथा रग्घू सरीखे कई एक थोड़े छिछोरे वायु को दुर्व्यसन के फीचड में फंसाय आप कदर के लायक हुए । सूर्य, चन्द्रमा, तारागण सबों का प्रकाश रात दिन मेघ से ढप मन्द पड जाने से जुगुनू कीडों की कदर हुई, जैसा दुर्दैव दलित भारत की इस आरत दशा में चारो ओर जब अज्ञान तिमिर की घटा उमड आई तो साधु, सदाचारवान्, सत्पुरुष 'कहीं दर्शन को भी न रहे, भूडे, पासण्डी, दुराचारी, मक्कार पुजयाने लगे । अस्तती जरिणी के कटाक्ष के समान सौदा मिनी अम्रपटल में चमक चमक छिपती हुई मानो इस बात को प्रगट करती है कि 'चरित्र में दाग लग जाना ऐसी ही घुरी बात है कि 'मुह छिपाना 'पडता है, अथवा 'यह बिजुली की चमक मानों बादलों के नेत्र हैं, जिनके द्वारा रात में अपने घर के घर जाती हुई अभिसारिका, नायिका का मुख, देख उन्हें यह भ्रम होना है कि 'रिन्तर की धारापात में चन्द्रविम्ब आकाश से पृथिवी पर गिर गया ह्यु! गजब हुआ, यही सोच में भर उडी जोर से चिल्लाने लगते हैं, यह गरजने का शब्द उन्हीं बादलों का चौक कर चिल्लाना है । दिन में सूर्य का, रात में चन्द्रमा का दर्शन किसी किसी दिन घडी दो घडी के लिये वैसे ही घुणाक्षरन्याय सा हो गया, जैसा अन्यायी राजा के राज्य में न्याय और इन्साफ कभी कभी बिना जाने अकस्मात् हो जाता है । पृथ्वी पर एकाकार जल छा जाने से भूभाग का सम विषम-भाव, तत्पदर्शी शान्तशील योगियों की चित्तवृत्ति के समान, जाता ही रहा । हिन्दुस्त्वान में बरसात

का मौसिम; बड़े आमोद प्रमोद, षा समझा जाता है, और उस समय जब इत उन्नीसवीं सदी की आसाइशें और आराम रेल, तार इत्यादि कुछ न थे; सभी लोग बरसात, के सबब अपना अपना काम काज छोड़ देने को लाचार हो जाते थे। यही कारण है कि जितने तिहार और उत्सव सावन भादों के दो महीनों में होते हैं उतने साल भर के बाकी दस महीनों में भी नहीं होते। उद्यमी और कामकाजी लोग भी जिनका बिना कुछ उद्यम और परिश्रम किये केवल हाथ पर हाथ रख बैठे रहने की चिड़ है और एक क्षण भी ऐसा व्यर्थ नहीं गवाया चाहते जिसमें वे अपने पुरुषार्थ का कुछ नमूना न दिखाता हों वे भी वर्षा ऋतु में शिथिल और ढीले पड़ जाते हैं; तो आवारगी और व्यसन के हाथ में अपने को सौंपे हुये इन दोनों बाजुओं का क्या कहना! जिनको हर दम कोई नई दिखती नये शगल की तलाश रहती-है। भसल है 'एक तो तितलौकी दूजे चढ़ी नीम'—

“कपिरपि च कापिशायन-

मदमत्तो वृश्चिकेन संदष्ट ।।

अपि च पिशाचग्रस्त-

किम्ब्रूमो वैकृतं तस्य ॥”

रईस और प्रतिष्ठित लोगों में बरसान के दिनों में बाहिरी ओर चोग बगीचों में आमोद प्रमोद का आम वस्त्र हो गया है। सुवीते वाले सभी अपने इष्टमित्रों को साथ ले बहुधा बगीचों में जाय नाच, रग, खाना, पीना दो एक बार अवश्य

डारते हैं, ये दीनों धाकूतो जयसे, घरसात शुरु हुई तब से रातो
 दिन ज़ागे ही में जा रहे, कभी अठवें दसवें घड़ी दो घड़ी के
 लिये घर आते थे, एक दिन साके हो गई थी, घटा चारो
 ओर छाई हुई थी, राह घाटे कुछ नजर न पड़ती थी, वगीचे
 के बाहर खेतों की मेड़ पर ठौर ठौर खेतों माला हरी हरी
 भासों पर हीरा सी चमक रही थी, छिन छिन पर गरजने के
 उपरान्त काली, काली घटाओं में दामिनी, क्रोधित, कामिनी
 सी दमक रही थी, सब ओर सन्नहटा छाया हुआ था, केवल
 नववारिद समागम से प्रफुल्ल भेकमण्डली नाऊ की घरात के
 समान सब अलग अलग ठाकुर बने टरुटर ध्वनि से कान की
 बेलियां झार रहे थे। एक ओर श्रीगुरु अलग अपनी वाचाट
 यकृता से दिमाग चाटे डालते थे। पेड़ के पत्तों पर गिरने से
 वर्षा के जल का टप टप शब्द भी सुनाई देता था। कभी कभी
 पेड़ पर बैठे पक्षियों का ओदे पख झारने का फड फड शब्द
 कान में आता था। बारह दुआरी भीतर याहर सजी और
 झाड़ फनूसों से आरास्ता थी, रोशनी की जगमगाहट से
 चकाचौंधो हो रही थी, जशन की तैयारी थी। नन्दू, हुमा
 और हकीम तीनों बैठे प्याले पर प्याला ठकका रहे थे। दीनों
 बाबुओं की हुकूमरस्ती में धूम थी, इस लिये तमाम लखनऊ
 और दिल्ली के हसीन यहा आ छुटे थे।

बुद्धू पाडे अफीम के झीक में ऊँचता तल्लार की मुँठया
 हाथ में फस के गहरे डेँडुडों पर बैठा हुआ मॉनो बर्राय रहा
 था—“कहा कहाँ के चौपट चरने इफ्ठे मये हा, अस मिन हात
 है कि इन हरामघोरन का अपन बस चलत तो काला पानी
 पट्टे देतेन। हाय! यह वही घाग और बारह दुआरी अहै जहा
 इनहिन बरसात के दिनने मा नित्य वेदपाठ और बसन्त पूजा

हात रही। अनेकन गुनी जनन केर भीरुकी भीरु आवत रहे और बडे सेठ सवन केर पूजा-सन्मान करतु रहे। तहा अब भाड, भगतिये, रडी, मुएडी, पलटने की पलटन आय-जुरे है। एक-बार एक मुसलटा बारहदुआरी के भीतर घुस गया रहा तिव, बडे सेठ साहब सगर बारहदुआरी धोआइन रहा, वही अब निरे मुसलमाने मुसलमाने भरे हैं। न जाने इन दोनों बाबु शिन का का है गया। नन्दुआ का सत्यानास होय कैसा जादू कर दिहिस है कि चन्दू महाराज और सेठानी बहू-हजार हजार उपाय कर थकी कोउनो भाति दीनों बाबू राह पर नहीं आवत। वा दिना बाबू बुद्ध दास का खुलाइन रहा, हम रात के बहिके घर गइन रहा पर एहका कुछ भ्यादन खुला, ओकर बाबू से गिष्टा-पिष्टा-अर्च्यो नहीं। ऊ तो बडे कजाक और बालिया है। हम ने अपने पढ़ने वालों को इस सच्चे स्वामि भक्त का परिचय एक बार और दिलाना इस लिये उचित समझा कि यह मनुष्य भी हमारे इस किस्से का एक प्रधान पुरुष है, यह आगे बडा काम देगा इस लिये इसे हमारे पाठक प्राद रक्खें।

अब और एक नये आदमी का परिचय यहाँ पर देना मुनासिर जान पड़ता है क्योंकि ऐसे दो एक और लोगों को जिना भरती किये-हमारे कथानक की शृङ्खला में जुड़ैगी। वयकम इस पुरुष का ३५ और ४० के भीतर था, नाम इसका पञ्चानन था। पञ्चानन के जोड का दिल्ली का याज्ञ और रसीली तबियत का, आदमी कम, किसी ने देखा था सुना होगा। यह मनुष्य चाल चलन का किसी तरह घुरा न था बल्कि चन्दू सरीसे शुद्धचरित्र की, मैत्री के भरपूर शायक था और कसौटी के समय चालचलन की शिष्टता भी

इसमें चन्द्र ही के टकरा की थी, इसी से चन्द्र से इसकी पटती भी थी और अनन्तपुर को छोटी सी वस्तु में दोनों का घर भी एक ही जगह धरन सटा सटा था। दोनों के घर के बीच केवल एक दीवालमात्र का अन्तर था। गम्भीरता या सकोच का यह जानी दुश्मन था। मुत्सिफी तक की मुख्तारी एक आमूली दर पर कर लेना, जो कुछ मिले उतने ही से अपने लडके वालों को खाने पीने से सब भाति प्रसन्न रखना, "न ऊधों के देने न माधों के लेने" और साभू के निश्चिन्त लम्बी तान से रहना केवल इतने ही को यह अपने जीवन का सार समझता था। अच्छा स्नाना अच्छा पहनने का इसे हृद् से जिया देह शौक था, तेहवार और क़च्चहरी में तातील का बड़ा मुस्ताक था। किसी के यहा ज़ियाफत में शरीक होने का इसे बड़ा हौसिला था। किसी के यहा कुछ काम पड़ने पर द्रावत खाना या उसको प्रोत्रकूफ बनाय ज़ियाफत दिलवाने में यह बहुत कम फर्क समझता था। साराश यह कि इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि जिसमें कुछ हसीब दिलबहलाय हो बही करना। हर हाल में खुश रहना और दूसरों को खुश रखना इसका सिद्धान्त था। इसी से क्या छोटे, क्या बड़े सब उमर के लोगों से यह मिलता था और उचित तथा योग्य बरताव से सबों को प्रसन्न रखता था। जिस तरह अपने हमउमर वालों से मिलता था उसी तरह कम उमर वाले लडकों से भी मिल उनको राजी कर देता था। वरन इसके मुखरेपन से बूढ़े लोग भी खुश रहते थे और कोई इसे बुरा न कहता था। यह बात तो कभी इसके मन में आती ही न थी कि ऊचे पद से और रुपये के कारण मनुष्य की प्रतिष्ठा और इज्जत में कुछ अन्तर आ सकता है। इस लिए जहा कहीं

कुछ' खुदकी लेने का अयसर मिलता था यह बिना कुछ धोले नहीं रहता था, चाहे वह आदमी कौड़ी कौड़ी का मुहताज हो या करोड़पती क्यों न हो। ससार में यदि किसी से दयाता था, या किसी की बुझुगी करता था तो केवल चन्द्र शेखर की। पञ्चानन के मन में चन्द्र शेखर का ऐसा रोब जमा हुआ था जिसे क्याल कर अचरज होता था। यद्यपि चन्द्र से भी कभी कभी यह दिल्गी लैड बैठता था किन्तु दो एक गम्भीर विचार की भावना कभी को कुछ देर के लिए इसके मन में अवकाश पाती थी तो चन्द्र ही के बार बार की नसीहत और उपदेश से। मसखरापन का यत्नाय यह साधारण रीति पर सय के साथ रफता था किन्तु मन में सोचता था कि हम बड़े गौरव के साथ लोगों से बर्त्तते हैं। इस तरह यह लोगों के बीच अपने को पिलौना बनाये था। सही, पर सबों का सेवक और सय से छोटा अपने को मानता था। सर्वसाधारण में यह परोपकारी चिदिता थी और अपने इरितयार भर जो किसी का कुछ भला हो सके तो उससे मुह नहीं मँडता था। घमण्ड का इसमें कहीं लेश भी न था, सुरत भी भगवान् ने इसकी ऐसी गढी थी कि इसे देख हसी आती थी। बड़ी लम्बी नाक, नीचे को झुके हुये छोटे छोटे मोछे, पर्ल कंद, पेट के ऊपर दोनों रड्डेदार छाती जैसा किसी गहरी नदी के ऊपर आगे की आर झुका हुआ कगारा हो। याल सुफेद हो खले थे पर जुल्फे सदा कतराये रहता था। अस्तु आज के जलसे में यह भी शरीक था। वहा हुमा को देख वह बोला "यावू अरुद्धि नाथ, तुमने ऐसी चुम्यके पत्थर अपने पास रख छोडा है कि किस पर इसकी कोशिश का असर नहीं पहुँच सकता? ठीक है ऐसी सेने की चिडिया आपके हाथ

सगी है, सभी तो आपने हम लोगों को बिलकुल भुला दिया।"

शुद्धिनाथ-भैर, गढे मुरदे न उर्यादिये यतलाइये अब आप लोगों की क्या ग्यातिरदारी की जाय (जूही का एक एक गजरा सबों के गले में छोड़) चलिये, आप लोगों को था की शैर करा लाघे (एक बड़ी भारी सन्दूक दो मुलियों के सिर पर लदाये हुये रघू को दूर से आता देख) लाघो लाघो अच्छे बल्ल से लाये ।

सब लोग—“यह क्या है ? यह क्या है ?” (सन्दूक खोल सब लोग एक २ बाजा उठा लेते हैं)—याह रे ! रघू महाराज, अच्छी जून यह तुहफा तुम लाये और क्या हिसार से लाये कि देढ़ कोही बाजे और यहा डेठ ही कोही बाजे के घज-पश्ये भी ।

नन्दू—(शुद्धिनाथ से) बाबू साहय, हमने कहा था बाजे हरगिज जियादह न होंगे बल्कि हुमा का हाथ फिर भी बाजा से खाली ही रहा ।

पञ्चानन—अच्छा आप लोग अपना अपना बाजा ले चुके हों तो हम “प्रोपोज” करते हैं कि हुमा, हम सब लोग, बाजा पजाने वालों की बँडमास्टर की जाय ।

नन्दू—मैं आपके इस प्रोपोजल को सेरुड करता हू । (मन में) हुमा या ये दोनों बाबू सब इस बख्त मेरे कब्जे में हैं, हुमा में हुमापन पैदा करने वाला भी मैं ही हू । आज यह पुराना अण्डल पञ्चानन अच्छा था फसा । यह उस गवार पण्डित का जिगरी दोस्त है । यह भी मेरे दल में आज आ शरीक हुआ इस बात की मुझे घडी ख़शी है । पुद्ध दास के

जरिये मैंने जो कार्रवाई की थी उसमें भी मैं भरपूर काम र्थाय हुआ, सच है; ऐव करने को भी हुनर चाहिये।

बुद्धू पाडे अफीम के भौक में एक चारगी चौक पडा और अपने सामने पुलिस के दो आदमियों को यात चीत करते देख चौकिन्ना हो पूछने लगा "तुम कौन हो ? किसके पास आये हो ?"

पुलिस—सेठ हीरा चन्द के पत्नी महद ऋद्धिनाथ व नन्दू व बुद्धदास तीनों कहा है ? उनके नाम का वारंट है तीनों फौजदारी निपुर्दे हुये हैं। साथ हथकडी के तीनों को अदा लत मे हाजिर करने का हुयम हमें है।

बुद्धू—(मन में) हमने तो पंहरो सौचा था कि इन चौपटहों का साथ हमारे धातू को किसी दिन सराब करेगा। जो यात आज तक इस घराने में कभी नही हुई उसकी नौवत पहुची तो अब धाकी क्या रहा। सब है धुरे काम का धुरा अजाम। देखिये आगे अब और क्या क्या होता है ?

सोलहवां अस्ताव ।

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति ।

"मेरे मन कुछ और है कर्ता ७०"

सय लोग अपनी अपनी पसन्द में प्रमोद में लगे हुये थे। एक ओर था, दूसरी ओर पो छुके का और सरोद का

आशिकतन भूलने, भूल रहे थे कि अचानक इस खबर के साहिर होते कानो, कान सब आपस में कानाफूसी करने लगे। एकवारगी सन्नहटा छा गया। नन्दू का चेहरा जर्द पड़ गया। घदा से निकल जाने की तत्परि सौचने लगा। दोनों बाबू, भी-घबडा गये और इस ख्याल में थे कि नन्दू उका दिल्ली पेर-ख्याह है, अपने ऊपर सब ओढ लेगा, बन दोनो पर आंच न आवेगी। इधर नन्दू इस फिकिर में लगा कि जिस इलजाम पर चारंट आया है, वह इन बाबुओं पर थाप दें तो हम साफ बरी रहें। सच है "आपत्तु मित्र जानीयात्" और इसी यत्न में लगा कि किसी तरह से चपत हों। अस्तु और सब जोग किसी न, किसी बहाने बहा से किसकने लगे पर नन्दू की कोई घात निकलने की नहीं लगती थी। इतने में घर से एक दूसरी खबर आई—“सरस्वती बहुत बीमार हो गई है, उठती सास चता रही है, जल्दी घर चलो।”

छोटे बाबू की दो वर्ण की लड़की, सरस्वती दोनों बाबुओं को बहुत हिली थी। घर में कोई छोटा लडका न रहने से सब उसे बहुत प्यार करते थे, और वह घर भर की खिलौना थी। बाबू को दोचन्द तरदुद में पडे, देख सब लोग बडे फिदिर में हुये, किन्तु नन्दू के आकार और चेष्टा से मालूम होता था कि इसे बाबुओं के साथ कोई सहानुभूति नहीं है केवल अपने बचाव के प्रयत्न में अलयत्ता लग रहा है। पचानन, जो कभी बाबुओं के किसी जलसे और नाच रंग में आज तक शरीक न हुआ था, और बाबू के दिली, दोस्तों से इस की जिमादह रब्त जब्त न रहने से अच्छी तरह उनके गुप्त चरित्र और छिपे-खाल खाल से बाकिफ न था, नन्दू की उस समय की चलाई से अचरज में आया। यद्यपि पचानन तरदुद और

फिकर से कोसों दूर हटता था पर इस समय वायुओं के अत्यन्त उदास, व्याकुल और चिन्तामग्न देखे यह भी सन्नहटे में आ गया। कुछ इस कारण भी कि चन्दू का जिसे यह सब से अधिक मानता था सेठ के घराने से बहुत लगाव समझ दोनों के साथ इसे हमदर्दी हो आई, नन्दू पर इसे क्रोध भी आया कि यह धूर्त नमकहराम इस मुसीबत और चक्रकुलिश से किसी तरह रिहाई न पा सके और इनके फसाने की फिकर में हुआ। पंचानन मुन्सिफा तक की अकालत की संनद हासिल किये था इस लिये कानून की धारिकियों को भी भरपूर समझता था। नन्दू को बातों में फसाय वायुओं को आँख के इशारे से योग के पिछवाड़े की खिड़की से बाहर निफाल दिया।

पंचानन—(नन्दू से)—वायू नन्दलाल, आप ऐसे सयाने कौआ इन बगुलों के दल में कैसे फसे ? आप को तो अपनी चालाकी का दावा था। “क्या रूख फंसा फफस में यह पुराना चूड़ल-लगी गुलशन की हवा दुम का हिलाना गया भूल”। सब है, सयाना कौआ जरूर गलीज खाता है। खैर, अब यतलाओ उस्तादों को क्या नजर करोगे हम इसमें पैरवी कर तुम्हें धमी इस मुसीबत से रिहा करें।

नन्दू—आप यकीन न लावेंगे मेरा इसमें कोई कुत्तर नहीं है, इन वायुओं ने मुझे भी फंसाय खराब किया।

पंचानन—जी ! आप ठीक कह रहे हैं। भला किसें शामत सजार है कि आप की बात पर यकीन न लावे। हम क्या हमारे बाप दादा अपने अपने घर में सब आप पर यकीन लाये हुये थे। यतलाह, ऐसे नये नवी पर जो यकीन न लाया तो कीन दूसरे पैगम्बर आवेंगे जो हम ऐसे गुनहगारों का

गुनाह माफ करेगे। हाल में हमारे प्रपितामह की बेजी हुई हमारे नाम की एक चिट्ठी आई है कि बाबू नन्द लाल, जो कहें उसमें एक शोशा भी गलत न समझो। तब भला मुमकिन है कि आप की बात का यकीन न करें ?

नन्दू—आप तो ठट्टों में उड़ाते हैं, यह मौका दिल्ली का नहीं है।

पचानन—जी नहीं, दिल्ली की इसमें कौन सी बात है, उस घन्ट दिल्ली अलबत्ता थी जब खूब गुलद्वारें उड़ते थे। और बाबूओं के पचाव की खूब विलफैल किसी न किसी ढंग से हो जायगी। बाबू दोनों चपत भी हो गये, अब आप अपनी कहिये ?

नन्दू—(सब ओर देख) (स्वगत) हाय ! बाबू क्या चले गये तो अब यह सब बला हमी को सहना पड़ेगा। पचानन चालाकी में हम से भी दूना जाहिर होता है और हमको फसाने के लिए इसने मन में तय कर लिया है तो अब हमारा निस्तार कठिन मालूम होता है। खैर, अब इसी की खुशामद करें (प्रगट) बाबू पचानन, आप चाहें तो मुझे भी यहा से निकाल सकते हैं मैं आप का बड़ा पहसानमद दूंगा।

पचानन—आप कुछ सदेह न करें, मैं आप की भरपूर खबर लगा (वॉरंट वालों को बुलाकर) बाबू अद्विनाथ तो यहा नहीं हैं और यहा आये भी नहीं। बाबू नन्द लाल अलबत्ता हाजिर है इन्हीं से बुद्ध दास का भी पता आपको लग जायगा। (नन्दू से) बाबू नन्द लाल अब कहिये जो कुछ आपको कहना हो, बुद्ध दास के गिरफ्तारी के जिम्मेवार भी आपही हैं। (दारोगा से) दारोगा साहब, बाबू नन्द लाल बड़े रईस

हैं इनके साथ किसी तरह की रियायत हो सकती हो तो मैं शिफारिस करता हूँ कर दीजिये। क्यौंजी बाबू नन्द लाल, यही आप का मतलब न था कि मैं अपनी ओर से आप के लिये न चूकूँ ? सैर, मैं अब जाता हूँ दारोगा साहब और आप दोनों आपस में यहां निपटते रहिये।

सत्रहवां प्रस्ताव ।

अपना चेता हेत नहिं प्रभु चेता तत्काल ।

पचानन नन्दू को उसी वाग में पुलिस के दारोगा से मिलाय आप चपत हुआ। दारोगा अपने ढग पर था कि इससे कुछ पुजावें भी और घात ही घात में इससे कबुलवा भी लें कि "मैं कुसूरवार हूँ"। इधर नन्दू अपने ढग पर था कि दारोगा को जरा भी उस घात की टोह न लगे जिसके लिए वारंट आया है और फसे तो हम और बाबू दोनों इसमें शामिल रहें। बाबू भी शरीक रहेंगे तो मुकद्दमे की भरपूर परवी की जायगी। मैं अकेला पड़ गया तो बेमौत की मोत मरा।

नन्दू—(मा में) पचानन का यहा से चला जाना मेरे हक में निहायत मुजिब हुआ। वेशक मैंने गलती की जो इस अपनी जमात में शरीक किया। मैंने कुछ और सोचा यहा कुछ और ही घात हो गई। यह तो मैं जानता था कि यह उसी चन्दू का दोस्त है लेकिन मैंने समझा कि यह ठगोल, दिल्लीगी बाज, मुसलमनोरा है, हमेशा अपने को खुश रखना किसी दूसरे को फसाय दिल्ली देसना, और हमेशा आराम से जिन्दगी

काटना इसका माफ़ला है, इसी से मैंने अपनी जमात में इसे बुलाया भी, पर इस चन्दू की कारंघाई से मैं इसे पहचान गया। यह चन्दू का निहायत सधा दोस्त है, चालाक तो पचानन बेशक है किन्तु बड़ा मरा येलीस और सधा आदमी है। जान पड़ता है यह मेरे आभालों का जानता है क्योंकि अब मैं ब्याल करता हूँ तो इसे छनक मेरी ओर से तभी से थो ज़र से इसने यदा कदम रकता, क्या तब्रज्जुष यह धारेन्ट भा चन्दू और पचानन दोनों की साट में आया हो। खैर, यहा तो मैं इस मरदूद दारोगा से किसी भाति निपटे लेता हूँ पर मेरे घर पर मेरी गैरहाजिरी में यह पचानन और चन्दू दोनों मिल कोई फसाद बरपा करेंगे कि मुझे ज़रूर फन जाना पड़ेगा। युद्धदास का भी नाम इस घाट में है, उसे बिलकुल हमकी खबर नहीं है, उमरफों भी चन्दू तक्रे हुये हैं। बाबू को तो यह किसी न किसी ततरीर से बन्ना लेगा, यह मुसोयत मुझे और युद्ध दाम दोनों को भुगतना पड़ेगा। खैर तो अब इसे टटोलें, देख यह किसी तरह मेरे चंगुल में आ सके तो बहुत अच्छा हो (प्रकाश) हुज़ूर, मैं गरीब आदमी हूँ और सब तरह पर बेकुर्र हूँ, मैं तो जानता भी नहीं यह क्या बात है। हाँ अतायता इन बाबुओं का मेरा दिन रात का साथ है खैर अब मेरी इज्जत हुज़ूर के हाथ है, मुझे आपकी खिदमत करने में भी कोई उज़्र नहीं है। मेरी जैनी औहात है बाहर नहीं हूँ।

दारोगा—(मन में) मैं इस घदमाश को ख़र जाता हूँ, इसमें शक नहीं इन बाबुओं को इसी ने खराब किया है, बाबुओं का क्या! इसने न जानिये कितने रईसा को बिगाड डाला। इस मूजी का तो मैं बहुत दिनों से तफ़े था, कई बार मेरे चंगुल में आया पर अपनी चालाकी से बचता चला गया

अच्छा पहिले इमे टटोले तो इसमें कहाँ तक धर्म है। मुझे पूरा विश्वास है यह सब शरारत इसी की है। पर तौ भी इससे प्रता लग जायगा कि इन वावुओं की कहा तक इसमें दस्तन्दाजी है ओर कोन कोन लोग इसमें शरीक हैं। मैंने उस हेरतशगेज बुद्ध दास की भी फिकिर कर रक्खा है। सेठ हीरा चन्द की शिराफत का ख्याल कर इन वावुओं पर मुझे भी रहम आता है पर इन बदमाशों को तो हरगिज न छोड़ूंगा। (प्रकाश) कहिये आप क्या कहते हैं, इज्जत तो इस नाजुक जमाने में, मैं दू या आप हों, बची रहना खुदा के हाथ में है, इन्ही लिए अकिलमन्द लोग फूक फूक पाव रखते हैं। मसल है "साच को आच क्या," अगर आप इसमें हैं नहीं तो डर किस बात का। कर नहीं तो डर क्या, अदालत इन्माफ के लिये है, वहा दूध का दूध पानी का पानी छान बीन अलग अलग कर दिया जाता है, आप बेफिकिर रहें, कुसूर नहीं किया तो तुम्हारा कुठ न होगा।

नन्दू—जी हाँ माफ कीजिये आपकी बात कटती है, अदालत में इन्साफ होता है यह आप नाहक कह रहे हैं, उलटे का सीधा सीधे का उलटा वहा हमेशा होता है, इन्साफ तो पेसाही, कभी साजनादिर होता है। दूसरे यह कि अदालत तो रुपया की है, अदालत ही पर क्या रुपये से क्या नहीं होता। खैर हुजर से मैं तकरीर नहीं किया चाहता, आप जो कहें मैं उसे अंगीकार किये लेता हूँ।

दारोगा—(मन में) पुराद्यों के करने में इसका जहया खुला है, अदालत ऐसे ही पैसे की करतूत से विगडती जाती है, अफसर रुपये के जोर से यह अथ तक बचता चला आया इसी से इसके दिमाग में यह बात समझी हुई है कि, अदालत

रुपये की है, खैर तुम बचा हमी से ठीक लगोगे (प्रगट) "मुझे यकोन कामिल होगया कि तुम जरूर इसमें कुसूरवार हो, वह कोई दूसरा खफीफ मामिला रहा होगा जब तुम रुपये खर्च बच गये। जानते हो यह कैसा टेढा मुकद्दमा है, जनाय, ये जाल के मुकद्दमे हैं, इसमें चौदह और डामिल की सजायें हैं। ऐसे ऐसे गन्दे ज्वालों को दूर रखिये कि आदलत में उल्लटे का सीधा और सीधे का उलटा होता है, अदालत इन्साफ के लिये है, ऐसे लोगों ने जैसे आप हैं अलयत्ता अदालत को बदनाम कर रक्खा है।

चौदह और डामिल का नाम मुन इसका चेहरा जर्द पड गया, नस नस ढोली हो गई, जो समझे था कि मैं अपनी चालाकी से बच जाऊंगा और पुलिस को भी अपना तरफदार कर लूंगा वह सब उम्मीदें जाती रही, गिडगिडा कर बोला — "अच्छा तो अब मेरे निस्तार को क्या छूट हो सकती है आप निश्चय जानिये मैं बेकुसूर हू, बाबू का मेरा दिन रात का साथ है इससे आपको मेरी ओर भी शक है और मैं भी खराबी में पडता हू"।

दारोगा—जी हा ठीक है, आप बिलकुल बेकुसूर हैं। तुम समझते हो मेरे आमाले छिपे हैं। जनाय, आपही ने बाबू का भी घराब किया। आप ऐसे लोगों का ऐसे ऐसे मुकद्दमों में निस्तार होना मानो आवासी और। बुराई का फरोग पाने के लिए इशतियालक देना है। अच्छा, आप तो अब रजाना हो उन दोनों को भी फिकिर की जायगी। नकीअली ! लो तुम इन्हें ले चलो मैं अब बाबू और बुद्धदास के लिए जाता हू। और बाबू को तो मैं जानता हू, बुद्धदास का पता क्योंकर लगाऊँ ? बाबू नन्द लाल आप बतला सकते हैं। बुद्धदास कहा मिल सकेगा। मैं समझता हू बुद्धदास का नम्बर तुमसे बहुत

अच्छा पहिले इसे टटोलें तो इसमें फहाँ तक दर्म है। मुझे पूरा विश्वास है यह सब शरारत इसी की है। पर तौ भी इससे प्रता लग जायगा कि इन वायुओं की कहा तक इसमें दस्तन्दाजी है और कौन कौन लोग इसमें शरीक हैं। मैंने उस हेरंतश्रगेज बुद्ध दास की भी फिंकिर कर रक्खा है। सेठ हीरा चन्द की शिराफत का ख्याल कर इन वायुओं पर मुझे भी रहम आता है पर इन बदमाशों को तो हरगिज न छोडूंगा। (प्रकाश) कहिये आप क्या कहते हैं, इज्जत तो इस नाजुक जमाने में, मैं हू या आप हों, बची रहना खुदा के हाथ में है, इन्ही लिए अकिलमन्द लोग फूक फूक पाव रखते हैं। ममल है "साच को आच क्या," अगर आप इसमें हैं नहीं तो डर किम घात का। कर नहीं तो डर क्या, अदालत इन्साफ के लिये है घहा दूध का दूध पानी का पानी छान घीन अलग अलग कर दिया जाता है, आप बेफिकिर रहें, कुसूर नहीं किया तो तुम्हारा कुछ न होगा।

नन्दू—जी हाँ माफ कीजिये आपकी घात कटती है, अदालत में इन्साफ होता है यह आप नाहक कह रहे हैं, उलटे का मीधा सीधे का उलटा घहा हमेशा होता है, इन्साफ तो पेसाही, कमी साजनादिर होता है। दूसरे यह कि अदालत तो रुपया की है, अदालत ही पर क्या रुपये से क्या नहीं होता। मैंर हुजूर से मैं तकरीर नहीं किया चाहता, आप जो कहें मैं उसे अगीकार किये लेना हूँ।

दारोगा—(मा में) पुराद्यों के करने में इसका जहया खुला है, अदालत पेसे ही पेसों की कपूत से बिगडती जाती है, अक्सर रुपये के जोर से यह अय तक घचता चला आया इन्ही के इसके दिमाग में यह घात समाई हुई है कि, अदालत

रूपये की है, खैर, तुम बचा हमी से ठीक लगोगे (प्रगट) "मुझे यकीन कामिल होगया कि तुम जरूर इसमें फुसूरवार हो, यह कोई दूसरा खफीफ मामिला रहा- होगा जब तुम-रूपये खर्च बच गये । जानते हो यह-कैसा टेढा मुकद्दमा हे, जनार, ये जाल के मुकद्दमे हैं, इसमें चौदह और डामिल की सजायें ह । ऐसे ऐसे गन्दे छ्यालों को दूर रखिये कि आदलत में उलट्टे का सीधा और सीधे का उलटा होता है, अदालत इन्साफ के लिये है, ऐसे लोगों ने जैसे आप हैं अलवत्ता अदालत को बदनाम कर रक्खा है ।

चौदह और डामिल का नाम सुन इसका नेहरा जर्द पड गया, नस नस ढोली हो गई, जरे समझे था कि मैं अपनी चालाकी से बच जाऊंगा और पुलिस को भी अपना तरफदार कर लूंगा यह सब उम्मीदें जाती रही, गिडगिडा कर बोला — "अच्छा तो अब मेरे निस्तार की क्या खुरत हो सकती है आप निश्चय जानिये मैं बेकुसूर ह, बाबू का मेरा दिन रात का साथ है इससे आपको मेरी ओर भी शक है और मैं भी खराबी में पडता हूँ" ।

दारोगा—जी हा ठीक हे, आप बिलकुल बेकुसूर हैं । तुम समझते हो मेरे आमाल छिपे हैं । जनार, आपही ने बाबू को भी खराब किया । आप ऐसे लोगों की ऐसे ऐसे मुकद्दमों से निस्तार होना मानो आयागी और बुराई को फरोग पाने के लिए इशतियाँलक देना है । अच्छा, आप तो अब खवाना हों उन दोनों की भी फिकिर की जायगी । नकीअलों ! लो तुम इन्हें ले चलो मैं अब बाबू और बुद्ध दास के लिए जाता हूँ । खैर बाबू को तों मैं जानता हूँ, बुद्ध दास का पता भ्रयोंकर लगाऊँ । बाबू नन्द लाल आप पतला सकते हैं बुद्ध दास कहा मिल सकेगा । मैं समझता हूँ बुद्ध दास का नम्बर तुमसे बहुत

चढ़ा बड़ा है, बल्कि उसी के भरोसे तुम्हें भी ऐसे ऐसे कामों के लिए हिम्मत होती है।

नन्दू—मैं सच कहता हूँ बुद्ध दास से मुझे कोई सरोकार नहीं है, सिर्फ इतना ही कि वह भी कभी कभी यावू साहब के यहाँ आया जाता करता है। मुझे तो यह भी खबर नहीं है कि वह कौन सा काम है जिसके लिये आप मुझे और बुद्ध दास को इस चारोंट में गिरफ्तार करते हैं।

दारोगा—जी हाँ आप कुछ नहीं जानते, आप तो कोई मुनरिख ह, खेर मुझे इससे क्या गज है, मुझे तो अदालत के हुकम का तकमीला करने से गज है। आप वहाँ जाकर अपनी सफाई कर लेना। लो इसके हाथ में हथकड़िया छोड़ इसे लेजाओ, मैं अब उन दोनों के तलाश में जाता हूँ।

अठारहवाँ प्रस्ताव ।

पानी में पानी मिलै मिलै कीच में कीच

सवेरे की नमाज से फारिग हो अफीम के नशे के झोंक में ऊघते हुये कोतवाला साहब कुर्सी पर बैठे सोच रहे हैं "कोतवाली का भी क्या ही नाजुक काम है। उधर शहर का आधारा और घदमाशों को दाय में रखना और उनके जरिये मतलब भी निकालना, इधर रईसों पर भी चाप चढ़ाये रहना, ऐसा कि जिसमें कोई उभड़ने न पावे। जट्ट से मैजिस्ट्रेट तक सब को अपनी कारगुजारी से खुश रखना और उनके खयाल में सुर्भरुई हासिल किये रहना कितना मुश्किल काम है। सुबह से शाम तक ऐसे ऐसे पेचीदह भगाडे आ पडते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। उस दिन उस जौहरी के इस

हजार के जवाहिरात उड़ गये। मुझे मालूम है जिन लोगों का यह काम है, पता भी मैंने लगा लिया है पर जौहरी मरदूढ़ बड़ा कजाक काइया है एक झुभी नहीं गला चाहता और यातों ही बात में काम निकाला चाहता है। मैंने सोच रक्खा है आधे पर मामिला तै करेगा तो खैर येहतर, नहीं बचा कुल से हाथ धो देंगे। ५०० रुपये रोज रिना पैदा किये दातुन करना हराम है, अच्छा, फिर हमारा गुजारा भी तो किसी तरह होना चाहिये। बड़े बड़े नीचायों का जो खर्च न होगा वह हम अपने जिम्मे धार्धे हैं। १० रुपये रोज धी बत्तों को जरूर ही चाहिये, किले सी बड़ी भारी इमारत छुंदा छेडे हुये हैं जिसमें लन्वों रुपये सोख गये। हमनिवाले दस पाच दोस्त दुस्तरखान के शरीक न हों तो नाम में फर्क पडे। चार २ फिटन, कोतल सवारी के घोडे वगैर का सब खर्च कक्षा से आवे, आपिर अल्लाहताला को हमारी भी तो फिकिर है। रोज नया शिकार न भेजें तो इतना बड़ा अटाला कैसे पार हो"—(पीनक से जग) कोई है। अरे ओ! फहमुआ (थोडा ठहर) अरे ओ फहमुआ (थोडा ठहर) अरे ओ फहमुआ मर गया क्या।

फहमुआ—हा साहब है आपउं (आख मौजता हुआ नौद में भरा आता है)।

कोतवाल—हरामजादा अभी तक पडा पडा सोताही था, नू अपनी इस आदत से, धाज न आयेगा। वीसों मरतबा कह चुके तुम्हे होश नहीं आता, समझे रह पाळ खिचवा लूगा।

फहमुआ—हुजर माफ करें कसूर भा, अब आगे से ऐसा न करिदौ—(हुफका भर सामने लाय रख देता है)

(कोतवाल हुक्के की निगाली होठों के नीचे दाब पीनक में आय फिर मन में) इसमें कुछ शक नहीं कोतवाली का ओहदा भी एक छोटी सी यादशाहत है मगर हुक्काम जिल्ह अपने चगुल में हों तब । पहले जो साहब थे उन्हें तो मैंने खूब साट रक्खा था, शहर के इन्तजाम का कुल दारमदार साहब ने मुझ पर छोड़ रक्खा था, जो चाहता था सो करता था । क्या कहें साहब हमारे घड़े खरी के आदमी थे, लोगों ने बहुतों मेरे खिलाफ कान भरा पर उन्होंने एक न सुना । जो याफत मुझे उनके जमाने में हो गई वह अथ काटे को होना है । नया कलट्टर बड़ा सरत मिजाज मालूम होता है, आदमी यह बेलौस जरूर है, मुझे उम्मीद नहीं होती कि यह किसी तरह मेरे चगुल में आ सकेगा । बेलौस और बड़ा मुन्सिफ मिजाज है, रैयत की भलाई का भी उसे बहुत ख्याल है, खैर देखा जायगा । कल से एक नया शिकार हाथ आया है, तीन चारेंटगिरमारी, अदालत से, मेरे पास आये हैं, इस चारेंट में सेठ हीराचन्द्र के घराने के लोग शामिल हैं । मुकद्दमा यह ऐसा हाथ आया है कि खूब ही पाकेट गरम होने का मौका मिलेगा, ५ तोड़े भी हाथ न आये तो कुछ न हुआ । इधर कई दिनों से विलकुल पाली जाती था, अल्लाह ने एक साथ भारी रकम भेज दी । कल रात यी घन्ना फडकेविजली और झूमड के लिये झगड रहीं थीं, यह रकम गोया उसी के नसीब से हाथ आवेगी । दोरोगा सुजानसिंह और नकीअली कानस्टेबिल को मैंने इसके लिये तैनात किया है, मालूम नहीं क्या हुआ । (पीनक से जग, एक फूँक हुक्के की लै)—अरे फहमुआ नामाकूल कैसी तम्याकू भर लाया है, झलेजा तक सुलस गया । अहमक तुम

से हजार मरतवा कहा गया तु अपनी आदतों से बाज न आयेगा। आठ रुपये सैर वाली तम्बाखू जो अभी कल मिट्टू तम्बाखू वाला नजरू दे गया उसे क्या किया, फ्यों नहीं भरा ?

फहमुआ—साहब भूल गयेउं हे भरे जावत हौं।

7 (नकीअली सलाम कर नन्दू को सामने हाजिर कर)

“हुजर, यह तो मिले है याकी दोनों की फिक में दारोगा साहब गये हैं।”

कोतवाल—आहा आप हैं कहिये आप तो याबू साहब के बडे दोस्त हं (मनमें) सैर, पहले इसी मजी से निपट लें। यह बडा बदमाश और चालाक है, अच्छा आज चगुल में आया (प्रकाश) आप लोग देखने हा, के सुफैद पाश हैं पर काम जो आप लोगों से बन पडता है वह एक हकीर छोटे से छोटा आदमी भी न करेगा। उस जाली दस्ता बेज में आप का भी दस्तखत है सच धतलाओ तुमने किस तरह उस पर दस्तखत किया। आप तो कानून से भी चाकिक है, अदालत की बातों को अच्छी तरह समझने हैं, तब मालूम होता है इसमें कुल शरारत आपही की है।

8 नन्दू—हुजर, जब यह दस्ताबेज जाली है तब मेरा दस्तखत भी जाल से बना लिया गया तो इसमें अचेरज क्या है ?

9 कोतवाल—सैर, तुमने भी यकारे किया कि दस्ताबेज जाली है और यही तो मेरा मतलब है (नकीअली से)। अच्छा इसे से जाओ, पहले में रफखो, उन दोनों को भी आ जाने दो तो जो कुछ कार्रवाई होगी की जायगी ?

उन्नीसवां प्रस्ताव ।

“विपदि सहायको बन्धु”

निशाँ का अवसान है । आकाश में दो एक चमकीले तारे अवतरु जुगजुगा रहे हैं । अरुणोदय की अरुणाई से पूर्व दिशा मानो टेसू के रग का घस्र पहिने हुये दिननाथ सूर्य की अगवानी के लिये उद्यत सी हो अपनी सौत । पश्चिम दिशा को ईर्ष्या-कलुषित कर रही है । लोग जागने पर रात के सन्नहटे को हटाते हुये अपने अपने काम में लगने की तैयारी करते सब ओर कोलाहल का मन्त्राप हुये हैं । कोई सबेरे उठ भगवान् के पवित्र नामोच्चारण में प्रवृत्त हैं, कोई शौच कर्म के लिये हाथ में सोंटा और लोटा लिये वहिर्भूमि को जा रहे हैं, कोई दन्त धावन के लिये वृक्ष की डालिया तोड़ रहे हैं, कोई अपने छोटे छोटे बालकों को गुरू जी के यहाँ ले जा रहे हैं, कोई मचलाये हुये लंडकों को फुसला रहे हैं, खेतिहर बैल और हल लिये खेत को ओर जा रहे हैं ।

ऐसे समय सुजान सिंह दारोगा तीन कानस्टेबल साथ लिये बाबू की कोठी के द्वार पर यमदूत सा आ गिराजे और यही कोशिश में थे कि ज्योंही दोनों बाबुओं में से कोई भी बाहर निकले कि उन्हें बारंट दिया गिरफ्तार कर लें ।

बाबुओं की हवेली के पिछवाड़े पिडकी सा एक छोटा दरवाजा जनाने मकान का था । हीराचन्द के समय तो बीसों दास दासी भोरही से अपने अपने टहल के काम में लग जाते थे पर वह तो अब किस्सा किहानी की घात हो गई । पर अब भी मखनिया नाम की पुरानी चाकरानी जो हीराचन्द की स्त्री के

बहुत मुह लगी थी पुराना घर समझ अथ तक टहल के काम में लगी ही रही। यह मरनिया हीरा चन्द का समय देख चुकी थी। यातुओं के जघन्य आचरण पर मन ही मन कुढ़ती थी। कोठी के दरवाजे पर पुलिस को बैठे देख खिडकी को धीरे से बटखटाया। सेठानी निरुल आई और किवाड़ा खोल इसे भीतर ले गई। इसे मौचकी सी देख कारण पूछा तो यह कहने लगी—“वह जी, आज काहे दुआर पर पुलिस के चपरासी बैठे हैं ?” यह सुनते ही सेठानी के हाथ पाव फूल गये घबडा उठी “हाय ! सयतोगया ही था अरु क्या सेठ के नाम में भी कलङ्क लगा चाहता हे ? हाय ! कपूत किसी के न जन्में !—अच्छा, तो जा चन्दू को बुला ला, तब तक मैं जा उन दोनों यातुओं को जगाती हूँ, और सावधान किये देती हूँ” ।

सेठानी—(मन में) हाय ! मुझ निगोडी को मौत न आई। सेठ के स्वर्गवास होते ही साने का घर छार में मिल गया। सच है “पूत सपूते तो धन क्या, पूत कपूते तो धन क्या” सेठ के समय का राजसी ठाठ तो न जानिये कहा खिलाश गया। किसी तरह अपनी धात धनी रहे और जिन्दगी के दिन कटें इसी को मैं अपना सोभाग्य मानती थी सो उसमें भी बट्टा लगा। हाय ! तिमहले पर दोनों धाबू सो रहे हैं, इतनी सीढिया मुझ से चढ़ी न जायगी और यहा से पुकारना ठीक नहीं तो अब क्या करूँ ? अच्छा चन्दू को आने दो।

चन्दू भी अचभे में आया कि आज इतने सवेरे सिठानी ने क्यों बुलाया। बाहर पुलिस का पहरा देख उसी खिडकी से भीतर गया।

चन्दू—वह जी क्या आज्ञा होती हे ?

सेठानी—(रो रो कर) चन्दू, मैं तुम्हारे अण से उरिण

नहीं हूँ, एक तुम्हीं तो सहारा हों नहीं तो चारों ओर से ऐसी भयङ्कर बरार बह रही है कि कहीं पता न लगता (फान में कुछ कह)।

चन्दू-अच्छा, तो तुम इतनी फिकिर रखो कि याद बाहर न निकलने पावे, मैं सब ठीक कर लूँगा।

वीसवा प्रस्ताव ।

बन्धनानि किल सन्ति बहूनि—

प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत् ।

दारुभेदनिपुणोऽपि शड्डाघ्नि —

निष्कृत्यो भवति पङ्कजवद् ॥

पाठक ! आज अब यहाँ हम प्रेमपुष्पावली के दो भ्रमरों का कथानक आप को सुनाना चाहते हैं। कुछ लिखने के पहिले आप को सावधान किये देते हैं कि हमारे ये दोनों भ्रमर निस्वार्थ प्रेमी हैं। इन्हें आप उस कोटि के प्रेमी न समझना जैसा इन दिनों बहुतरे अपना मतलब साधने के लिये परस्पर प्रेमी बन जाते हैं। जरा भी अपने स्वार्थ में चूक हो जायें, पर मैत्री क्या बरिक्त साप और नेवले का सा हाल उन दोनों का हो जाता है। हमारे पाठक पचानन से परिचित होंगे, जिनकी भेट हम अपने पढ़ने वालों को पहिले करा चुके हैं। इस प्रेम के दूसरे भ्रमर का बार बार नामसङ्कीर्तन अनुपयुक्त है। बस समझ रखो इस सौ अज्ञानमें यही एक सुजान है, जिसे हम प्रेम को फुलधारी का दूसरा भ्रमर कह परिचय देते हैं। पञ्चानन ठठोल तौ या ही पर इसका ठठोलपन सब के साथ एक

सा नहीं रहता था। किसी तरह के तरद्दुद, फिकिर और चिन्ता से इसे चिढ़ थी। किन्तु जब अपने किसी एकान्त प्रेमी को तरद्दुद में पड़ा देखता था तो जहा तक बन पडता था आप भी उसे तरद्दुद से बाहर करने को भिड़ी तो जाता था। इस समय चन्दू को कुछ न सूझा और कोई बात मन में न आई कि कैसे सेठ के घराने को दुर्गति से बचाव केवल इतना ही कि पञ्चानन से मिल इससे इसकी कुछ सलाह करें, इस लिए कि पञ्चानन अदालती कार्रवाइयों को भरपूर समझता है, वह कोई ऐसी बात निकालेगा कि जिससे भरपूर निस्तार हो जाय। यद्यपि इन दोनों की गाढ़ी मैत्री तो थी पर पञ्चानन अपनी ठठोल आदत से बाजन था चन्दू को 'चकोर' कहता था और चन्दू भी इसे 'चारु चचरीक' कहा करते थे। आज अपने यहा भोर ही को चन्दू को आये देख पञ्चानन बोले "आज चकोर को दिन में चकाचौंधी कैसी ? कुसूर माफ 'अथ प्रातरेवानिष्ट दर्शनम्'।"

चन्दू-सच है अनिष्ट दर्शन भी इष्टदर्शन न हुआ तो चारु चचरीक के चिरकाल का प्रेम कैसा ?

पञ्चानन-आप तो जानते ही हैं कि कुशल प्रश्न के पूछने में कौसी पेचिश उठा करती है, इससे मैंने यही बेहतर समझा कि इस आदत से बाज रहूँ और फिर वह प्रेम ही क्या जब इस प्रेम के याग के माली को प्रेम पुष्प की सुगन्धित फली हृदय के आलमाल में रिल परस्पर एक दूसरे को प्रमुदित न कर सकी।

चन्दू-सच है, यदि उस आलमाल को चारों ओर कटीले पौधे न उग आये हों, इसलिये जब तक उन कटीले पौधों

को उखाड़ न डालेगा तब-तक उस माली की सराहना ही पया ?

पञ्चानन-रौर, आप भी इस दुनयवी पेच में आ फसे "बाद मुद्दत के फसा है यह पुराना चड्डल" (हसता है) ।

चन्दू-मित्र, अब इस समय ठठोलवाजी रहने दो, कोई ऐसी बात सौंचो जिसमें सेठ के घराने की पत रह जाय । हम लोग निरे पोथी याचने वाले अदालत की कारवाइया और कानून के पेचों को क्या-समझें । तुम अलवत्ता इसमें परिपक्वबुद्धि ही । कोई ऐसी बात सौंच के निकालो कि इन दोनों वायुओं का निस्तार हो, चन्दू और बुद्ध दास को अपने किये का फल मिले । —

पञ्चानन-जी हा, वायुओं ने तो समझा, या कि वट्ट के हाथ मारा है । रकम इतनी हाथ लगती है कि कुछ दिन के लिए चैन है । अच्छा तो मैं अब इस बात की धोज करूंगा कि वह जाली दस्तावेज किस ढंग पर लिखा गया है और वायुओं की साजिश उसमें कहा तक है । तो अब इस जून तो आप पधारें, हम इसकी फिकिर करेंगे पर पुलिस के कुत्तों का मुद्द मार पिंड छुटवाना शजिव है ।

अस्तु चन्दू ने उन दोनों के घचाने को क्या किया सो आगे खुलेगा । पञ्चानन को जी से लग गई कि अपने मित्र चन्दू की इच्छा पूरी करें । अब, यह सोचने लगा कि क्या उपाय होना चाहिये कि च दू का मनोरथ भी सिद्ध हो और उन दोनों बदमाशों को उनके किये का फल मिले । पञ्चानन चाहाकी और कानूनी बाराकियों के समझने में किसी से कम

न था, बल्कि उस प्रान्त के नामी वकील पेचीदह मुकदमों में बहूधा इसकी राय लिया करते थे। कभी कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जिस मुकदमें में इसने जैसी राय दी वह हाईकोर्ट तक बहाल रही बड़े बड़े जालियों को यह बात की बात में ऐसा पकड़ लेता था कि उनकी एक भी नहीं चलती थी। पर इन सब गुणों के रहते भी इसे जो सच्चा, न्याय और इन्साफ होता था वही पसन्द आता था। "साच को आच क्या" यह पालिसी हमेशा इसे रुचा की। इस लिये इसको यही पसन्द आया कि हीरा चन्द के दोनों बंधुधर खुद अदालत में जाय हाजिर हों और जो सच हो सो कह दें। इससे वे दोनों तो जकर ही फस जायेंगे, और बाबुओं के बचाव की कोई सूरत निकल आवेगी। अर रह गया इनका थकरोर कर देना, इस पर बहस और तकरीर की बहुत कुछ गुजाइश रहेगी। सच पूछो तो यह बड़े बड़े बैरिस्टर और वकील जो हजारों एक दिन की बहस का मुथकिल से पुजाय वैचारि को उलट्टे छूरा मूड भरपूर अपना मंतलय गांठते हैं, सो इसी तकरीर और बहस की बदीलत। बाह धन्य! विधाता। यह जो प्रचलित है कि "बात की करामात" सो क्या ही सटीक है। बात में बात पैदा कर देना अद्भरेजी ही कानून हमें सिखाता है। पर तोफगो तो यह, जैसा मसल है "चोर से कहो चोरी करे, शाह से कहो जागता रहे" इसी का नाम है। हमें क्या हमें तो दिल गहलाव चाहिये, हम मुकदमों की पेचीदगी ही में अपना दिल गहलाव निकाल लेते हैं। पर सच पूछो तो (Litigation) कानून की शरीकिया ही बेईमानी और फरेप लोगों को सिखा रही है। इसी ने मुझे यही इसमें बचाव की सूरत मालूम होती है कि बाबू जो कुछ सच्चा

हाल हो अदालत में जा एकरार कर दें। कानून की मन्शा है कि जुर्म करने वाला कसूरवार नहीं है, बल्कि वह जो उस जुर्म का उसकाने वाला होता है। ऐसा होने से मुकद्दमे में बहस की फर्रि खुरत पैदा हो जायगी। कदाचित् बडे सेठ के रईस घराने पर रहम कर हाकिम बाबुओं की रिहाई कर दे।

इकीसवां प्रस्ताव ।

खल उधरे तत्काल ।

मसल है "सबेरे का भूला साक को आये तो उसे भूला न कहना चाहिये" ।

दूसरे दिन चन्दू बाबुओं के पास गया और पाला की मारी मुरझानी कली सी उनके मुख की छवि पाय, चन्दू के मन में सेठ जी के साथ इसका पुराना सच्चा स्नेह उमड आया। बाबू भी इसे देख आसुओं की धारा य्हाने लगे। जिससे मालूम होता था कि अब यह दोनों राह पर आने का पूरा इरादा कर चुके हैं, और जो चूक इनसे बन पडी है उसके लिए भरपूर पछता रहे हैं। चन्दू भी अब इन्हें इस समय अधिक लजित करना उचित न समझ, ढाढस बधाते हुए बोला "साक का भूला सबेरे आये तो उसे भूला नहीं कहते, अब भी कुछ नहीं थिगडा, तुम बडे बाप के लडके हो, कभी सम्भव नहीं था कि सेठ हीरा चन्द ऐसे धर्मात्मा और पुरयशील के बश धरों का ऐसा हाल हो। तुम दु सग में पड यहा तक अपने को भूल कर अजान बन गये कि अन्त को इस दशा को पडुचे, अब शोक मत करो, मैं फिकिर कर चुका हू। ईश्वर ने

चाहा और मेठ का सुकृत है तो तुम्हारा बाल न बाड़ेगा और
 भदालत में तुम्हारी रिहाई हो जायगी, किन्तु जिनके जाल
 में तुम अब तक फंसे थे और जिन्होंने चाहा था कि इन नई
 चिड़ियों को फंसाय कषाय सा भुज निगल बैठें, वे ही अपने
 पानक अग्नि में भुज कर फयाव हो जायेंगे। तो अब आगे से
 प्रण करो कि अब अज्ञान न यनें।"

दोनों की इस तरह पर चीन चीत हा रही थी कि सडके
 से चिह्नाते हुए किमी की आवाज सुन पडी "हाय! मने ऐसों
 नहीं समझा था कि नन्दू के कारण मेरी यह दशा होगी। उसे
 बदमाश नन्दू ने अपने भस्मक वायुओं को घेबकूफे धनोंकर
 फसाने की कोई धान छोड नहीं रखी थी। मैं यह जकर
 कहगा कि यावू ऐसे रईस खान्दानी की यह कभी इच्छा न रही
 होगी कि वे थोडे के लिए नियत रिगाडें। यह नन्दू इस बुराई
 का जैसा घानीमुधानी रहा वैसा ही यह सब मुसीबत भी
 उसी पर आ टूटी। मैं बेकशूर हूँ। पुलीस के सिपाही—
 "बुप रह ये, सेत मेत की टाय टाय कर रहा है। उम वस
 इन सब बातों का खयाल क्यों न किया, जब जाल रचने बैठा
 था। घचा, बहुत दिनों के बाद हम लोगों के चगुल में आये
 है।"

नन्दू इन सब बातों को सुन मन ही मन प्रसन्न होने लगा
 और सोचने लगा कि इसका इस जून का यह चिह्नाती मेरे
 लिए बहुत फायदे का हुआ। अब मैं जाऊँ और इसकी खबर
 पचानन फ़ो दूँ।

नन्दू—(प्रकाश) यावू, तुम बेगडके रहो ईश्वर ने चाहा
 तो तुम्हारी रिहाई हो जायगी।

वाडसवाँ प्रस्ताव ।

मन्थमेव जयति नानृतम् ।

अन्त को यह मुकदमा लगनऊ के चीफक्वार्टर में पेश किया गया । पचानन को—इसमें चन्दू ने गवाह नियत किया । पचानन को जो सदा चीन में रहना ही अपने जीवन का उद्देश्य माने हुए था, लगनऊ जाना नागवार हुआ किन्तु चन्दू के उद्देश्य से उसे ऐसा करना ही पडा । दूसरे यह कि चन्दू ने याबू का कचहरी में जाना अनुचित और भेट हीरा चन्द की हतक समझ इमे गाबुओं की ओर से मुग्तार मुकर्रर किया था ।

मुकदमा शुरू होने पर, चन्दू बुलाया गया । यह कांपता कांपता दो पुलिस के पहरे में जज के सामने राजिर हुआ । जज ने पूछा “तुम अपनी सफाई इस मुकदमे में क्या देते हो ?”

चन्दू—हुजूर, यह सब पुलिस की कार्रवाई है । मेरा इसमें कोई कुसूर नहीं और हो भी तो यह हरकत मैंने याबू के कहने से की ।

पचानन—चन्दू याबू, तो क्या आप इसमें विलकुल ये कुसूर हैं ? उस दिन घाट आपके नाम आया था कि याबू के नाम ? आप चालाकी से न चूकियेगा । सच है अन्धड में जब कोई बड़ा पेड़ उखड़ने लगता है तो अपने साथ दो एक छोटे मोटे वृक्षों को भी ले डालता है, और आपने तो ऐसे ऐसे कई परु याबुओं को हलाल कर डाला । पहले आपने कहा “हम विलकुल बेकुसूर हैं” पीछे से कहते हो “किया भी तो याबुओं के कहने से”—इससे साफ जाहिर है कि आप अपने साथ याबुओं को भी फसाना चाहते हैं ।

जज—(पुलीस से) तुम दोनों इसके बारे में क्या जानते हो ?

पहिला पुलीस—हुजूर, इसने जाल किया है और हमेशा से यही काम करता रहा है, इसके साथ एक आदमी, गुनास बुद्धू और भी है, यह भी इसी अदालत में हाजिर है, ये दोनों आपस में मिले हुए हैं और यही पेशा इन लोगों का है कि नई उमर वाले रईस को लड़कों को फसाया करें।

पचानन—हुजूर, यह विलकुल सही है आज दिन अथवा भर में हीरा घन्द जैसे रईस हैं सब लोग जानते हैं, तब उनके लड़कों को क्या पडी जो इतनी थोड़ी सी रकम के लिये, ऐसी बेइज्जती का काम कर गुजरेंगे। अदालत को जो कुछ दरियासू करना हो में उनकी तरफ से मुयतार हाजिर हूँ, पर इतना जरूर कहूंगा कि इन दोनों का हमेशा से यही ढंग चला आया है। ये लोग रेडडी के लिये मसजिद ढहाने वाले हैं। क्यों नन्दू गारू, सच है न ? (नन्दू सिर नीचाकर लेना है) हुजूर, अब अदालत को कोई शक इसके कुसूरवार होने में न रहा, और फिर इन दोनों का तो सदा से यही माकूला रहा है कि अङ्गरेजी राज्य में अशोलत और कानूनों की प्रेचीदगी इसी लिये है कि जाल रचे जाय।

जज—अगर तुम्हारा कहना सही है तो तौहीने अदालत एक दूसरा कुसूर इसपर लगाया जा सकता है। अच्छा, तो इस सत्र के लिये इसको सात वर्ष की सजा का हुक्म दिया जाता है और अदालत मातहत की तजवीज देवने से मालूम हुआ है कि कातिब इस जाल का बुद्ध दास है। इस लिये उसको दश वर्ष की कैद का हुक्म होवा है।

लेखसर्वा प्रस्ताव

राजा करै सो न्याव, पांसा पड़ै सो दांव

नन्दू की घुरी परिणाम देय इन बाबुओं को कुछ ऐसा भय सा समा गया कि उसी दिन से उन्हें चेत हो आई। जैसा किसी को दीवानापन सवार होगया हो लगातार किसी अकसीर दवा के सिधने से जव दीवानापन उतर जाय, अथवा खोने से जैसा कोई जाग पडा हो, या कोई भादक द्रव्य भाग अफीम शराय इत्यादि पी कर मतवाला हो बकेता फिरे मद् उतर जाने पर, अथवा भूत सवार हो भार फूक के उपरान्त उतर जाने से हाश आज पर अपने बिये को पछताना हुआ मुह छिपाता फिरे, वही हाल इस समय दानों बाबुओं का था। अब जो इन्हें चेत आई तो पकान्त में बैठ ये गंठी तक आसू बेहाया करते और पछताने। सब से अधिक पछतावा इन्हें बडे सेठ साहब की बनी हुई बात के विगड जाने और असंख्य धन के निकल जाने का था। "हाय! इस बदमाश नन्दू ने मुझे अपने जाल में फसाय मेरी धौनार भी, दुर्गति करा डाली।" अब इनके यह ग्याल आया कि जिस बात में अब भी किसी तरह जरा भी उस बदमाश का लगाव रह जायगा उसमें कुशल नहीं। "यत्रास्ते विपत्ससर्गोऽमृत-तदपिमृत्यवे"। अपने चचा बुड्डे मानिक चन्द का नन्दू को बाबू ने मुखतार आम कर दिया था उस मुखारनामे को अदालत से मन्सूख करा दिया और नन्दू की सलाह मान मानिक चन्द का माल मताल अपने कब्जे में लाते की जो अभिसन्धि की थी उससे भी अपने को अलग कर जो कुछ की गज उस बूड सेठ का

टिप्पणी सहित कठिन-शब्दार्थ-सूची ।

सांकेतिक-शब्द—(स० से सस्कृत। अल० से अलङ्कार। अ० से अरबी। फा० से फारसी। अंग० से अङ्गरेजी)।

छोटा—(न० छुट्ट) दुःख ।

सातो—(म० तप्त) जलता हुआ, गरम ।

दुर्व्यसनी—पुरा शौक करनेवाला, क्रिजल-प्रवृत्त, अप्रयत्नी ।

“दुर्व्यसनी लगे है”—यहा पर उपमा अलङ्कार है ।

“मानो प्रकृति देवी चाहती है”—इसमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

प्रेयसी—प्यागी, प्रियतमा ।

“मानो हस सा रहै है”—उत्प्रेक्षा अल० ।

“जिसकी सम विषम व्याप रही है”—उपमा अल० ।

सम विषम भूभाग—ऊपर खावड धरती ।

चितान—चश्मा ।

“मानो चितान रूप दिया गया है”—उत्प्रेक्षा अल० ।

“मालूम होता है” “होड होड” “लगाये हुये हैं”—उत्प्रेक्षा अल० होड—वर्षा ।

“मोती से चमकते” “उपहार बन रहे हैं”—समासोक्ति अल० ।

निशानाथ—(निशा-रात, नाथ-स्वामी) रात्रि क स्वामी चंद्रमा निशाचघृटी-रात्रि रूपी नव (नर) बधू (पट्ट) ।

“चादनी धरती”—अपनुनि अल० ।

“यहा कन्या प्रस्तुत है”—समासोक्ति अल० ।

मनसिज—(मनसि-मन मं, न-पैरा जेना) मन से जो पैरा होः कामदेव, इसका दूसरा नाम मनोभय है ।

मेख—(स०-वेप) पहिनाच ।

तरुनाई—(स०-ताहृष्य) जवानक

कचलपटी-(सं० कञ्चलम्पटा)-
आगराग।

द्विष्टो (पेन-गुदता, नीचता।

श्राय (पुरानी हिंदा क 'आसना' 'आहना' (होना) क्रिया का पूर्वकालिक रूप, शुद्ध, शब्द 'आदि' है। प्राय मद्दजाने पुरानी

हिन्दी क अनुसार धातुओं का पूर्वकालिक रूप एसा ही लिखा है। अय म्पानों में भी जैसे 'पिक-डाय', 'बुलाय' इसी तरह से समझना चाहिये) आकर।

सोवत हैं-सोते हैं (प्रयाग के आन-पास की यह भाषा है)।

दूसरा प्रस्ताव ।

जलप्राय-जलपय, वह प्रदेश या म्यान जहा जल अधिकता में हो।

हरित सृण-आच्छादित-हरा

हरी घास से ढकी हुई।

मरकतमई सी-मानो पने (एक प्रकार का हरा मणि) स जड़ी हुई।

यांकुरे-बंक, बांका (यह शब्द प्राय 'वीर' शब्द के साथ आता है, जैसे 'वीर बांकुरे')।

पुण्यतोया-पवित्र जल वाली।

सरिद्धरा-नदियों में श्रेष्ठ।

विघ्नैः परित्यजन्ति। ("उत्तम

जना" के स्थान पर, "उत्तम

जना" पढ़िये), बारुधार विघ्न

पढ़ने पर भी जो कार्य को प्रार-

म्भ करके डम, बीच, हा, में नहीं

छोड़ देते वे श्रेष्ठ पुरुष हैं।

अनुशीलन-अभ्यास, अध्ययन।

बहुश्रुत-(बहु-बहुत, श्रुत-सुना हुआ या शास्त्र) जिसने बहुत सुना, से

अर्थात् विद्वान, पण्डित।

प्रथचुम्बक-(प्रथ-पुस्तक। चुम्बक-चूमन वाला) जो किसी

विषय का पूर्ण विद्वान न हो,

वरन ग्रंथों का फल पाठमात्र

कर-गया हो-उमके-विषय को

समझा न हो। अल्पज्ञ।

साक्षरमात्र-जा थोडा भी पढ़

लिया हो।

वृत्ति-ज्ञान।

वेदरेग-बिना साध समझ।

वेजा-अनुचित।

जनखा-(श्रु जनक) जिन्होंने नम-

सक।

सुमिरनी-जपने की २० श्रुतियों की
माला ।
नितान्त-अत्यन्त ।

स्फूर्ति-शक्ति, प्रतिभा ।
नवनता-नवता ।

तीसरा प्रस्ताव ।

“गुरो निधीयते”-गुरुओं की सब
जगह कदर होती है ।

विद्वन्मण्डली-मण्डल शिरो
मणि-विद्वानों के समूह में सर्व
श्रेष्ठ ।

दुरुह-कर्मि ।
अनुपपन्न-असम्भवं ।
गुजरान-(का शब्द) ध्यतान,
जीवित निवाहाथ ।

ध्रुताध्ययनभम्पन्न-विद्वान् ।
सद्भुत-अच्छा चरित्र वालों, मदा
धारो ।

लिलार-(सं० ललाट) मन्त्रक, माया
दामिनि-(सं० दामिनी) विजुलो ।
आर्य-अपियों का बनाया हुआ ।
सन्धा-तठ ।

भामती थी-मासूम' होता था ।
मन मानम-मन रूपी मानमरौवर,
रूपक अल० ।
काविक-शरीर सम्बन्धी ।
मानसिक-मन सम्बन्धी ।

मोतकिद-कायल ।
“शान्ति” और “क्षमा” कुंभ

माकर-इसमें रूपक अल
हारों की लकी की लड़ी
हे ।

तृष्णासता गहन धन-लोभरूपी
लताओं का घना जंगल ।
अज्ञानतिमिर-मूलता रूपी अन्ध
कार ।

सहस्राशु-(सहस्र-हजार । अशु-
किरण) हजार किरणवाला, सूर्य ।
दुराग्रह-किसी बात पर मूढता व
साथ ठठ करना ।

कूरग्रह-पाप ग्रह (सितारे) शनि
शर, शेट्टे, केतु आदि ।

अस्ताचल-(अस्त-द्वना, दिपना ।
अचल-जो न चले; पर्वत या
पगड़) पुगने सिदान्त के अनु
सार जहा मूय, “अस्ता” अस्ति
एव अस्त (दिप) हो जाती है ।

उदयगिरि-यह पर्वत जहाँ से मृग
आदि पर्व उदय होते हैं ।

उपशम-शांति ।

सौजन्य सुमन-साधुता ।
रूप ।

सुसुमाकर-वसतः, बोटिका ।

रीभगये-पसल होगये ।

पट्टशिष्य-मुख्य शिष्य ।

अनुहार-गमानता ।

घाकपाटत्र-बीलने में चतुर्गार ।

चौथा प्रस्ताव ।

“योर्वन चतुष्टयम्”-जवानी,
घन दौलत, प्रभुताइ, और अना
मता इन मं से एक एक अनध
क करन घाल गाने हैं फिर जहा
ये चारा इकट्ठे हो जाय उसका
क्या कहना ।

वेदन्तिहा-प्रसंख्य ।

आवृत्ति-शकल, मृत ।

“मानो महीने हैं”-यहा
उत्प्रेक्षा अलंकारों की एक
लडी है जिसमें रूपक अल
कार भी गौण रूप से विद्य-
मान है ।

सुरतसागर-गुण्य का समुद्र ।

बीजाङ्कुर न्याय-बीज और अंकुर
में जो परस्पर में सम्बन्ध है
उसी को देखकर इस न्याय की
दृष्टि हुई है अर्थात् बीज अंकुर

का कारण) वसातरु से अंकुर
भी बीज का कारण । यह न्याय
धन ध्यान पर व्यवहार होता
जाता है । चोचों के बीच में
न्याय और कारण का सम्बन्ध
हता है ।

अंक-त्रिंश चंद्रमा में फलक ।
व्यामुद्रित, शास्त्र-ज्योतिष, शांके
का एक अंग जिमसे इस्तरेला
आदि का विचार किया जाता है,
समाय सके-उमा सके, (इस तरु
का रूप भी भट्टजी की हिन्दी की
श्याम विशेषता है । इसी तरह से
“जाय सके,” “खाय सके”
इत्यादि ।)

लल्लोपत्तो-चापलूमी, सुरामद ।

खुचुर-(मं०-बुचर) ध्यय का दोष
निकालना ।

सुमिरनी-जपने की २० श्लोकों की
माला ।
नितान्त-अत्यंत ।

स्फूर्ति-प्रकाश, प्रकिर्ण ।
नयनता-नम्रता ।

तीसरा प्रस्ताव ।

“गुणै निधीयते”-गुणों की मज
जगह इतर होती है ।
विद्वन्मण्डली-मण्डलन शिरो
मणि-विद्वानों के समूह में सर
श्रेष्ठ ।
दुरुह-व्यभिच ।
अनुपपन्न-असमर्थ ।
गुजरान-(का-शब्द) व्यतान,
जीविका निवासाथ ।
ध्रुताध्ययनम्पन्न-विद्वान् ।
सद्वृत्त-अच्छा चरित्र वाली, मदा
धारी ।
लिलार-(सं०-ललाट) मन्त्र, माया
दामिनि-(सं० दामिनी) विजुली ।
आर्य-स्वर्णों का बनाया हुआ ।
सन्धा-गाठ ।
भामती थी-मालूम होता था ।
मन मानेस-मन रूपा मानसरोवर,
रूपक अल० ।
कायिक-शरीर सम्बन्धी ।
मानसिक-मन सम्बन्धी ।

मोतकिद-शायल ।
“शान्ति और क्षमा कुंसु
माकर”-इसमें रूपक अल
इरों की लकी की लड़ी
है ।
तृष्णालता गहन यन-लौभरूपी
लनाओं का घना जगल ।
अज्ञानतिमिर-मूलता रूपी अंध
कार ।
सहस्राशु-(सहस्र-हजार, अंशु-
किरण) हजार किरणवाला, सूर्य ।
दुराग्रह-किसी बात पर मूलता क
साथ ठठ करना ।
कूरग्रह-पाप ग्रह (सितारे), शनि
शर, शङ्ख, केतु आदि ।
अस्ताचल-(अस्त-दूबना, क्षिपना।
अचल-जो न चले, पर्वत या
पहाड़) पुरान सिद्धांत के अनु-
सार जहां सूर्य, चंद्रमा आदि
ग्रह अस्त (क्षिप) ही जाते हैं ।

उदयगिरि-वह पर्वत जहाँ में सूर्य
आदि ग्रह उदय होते हैं ।

उपशम-शांति ।

सौजन्य सुमन-प्रामाण्य रूपी
पुत्र ।

कुसुमाकर-वसन्त, बाटिका ।

रीभगयै-प्रसन्न होगय ।

पट्टशिष्य-मुख्य शिष्य ।

अनुहार-समानता ।

चाक्पाटव-शीलने में चतुर्गै ।

चौथा प्रस्ताव ।

“यौवन चतुष्टयम्”-जयानी,
धन दौलत, प्रभुताइ, शौर अथा
नता इन मं से एक एक अनर्थ
के करने वाले होते हैं फिर जहा
ये चारा इकट्ठे हो जाय उसका
क्या कहना ।

वेद्विनिहा-प्रसन्न ।

आहृति-शकल, मृत ।

“मानो, महीने है”-यहा

उत्प्रेक्षा-अलंकारों की एक
लडी है जिसमें रूपक अलं
कार भी गोण रूप से विद्य
मान है ।

सुकृतसागर-गुण्य का समुद्र ।

बीजाङ्कुर न्याय-बीज और अङ्कुर

में जो परस्पर में सम्बन्ध है

वसी को देखकर इस न्याय की

व्यपत्ति हुई है अर्थात् बीज अङ्कुर

का कारण है उसी तरह से अङ्कुर
भी बीज का कारण है । यह न्याय
एम स्थान पर व्यवहार होता
है जहा दो चीजों के बीच में
कारण और कारण का सम्बन्ध
होता है ।

अंक-चिह्न चंद्रमा में कलक ।

सामुद्रिक शास्त्र-ज्योतिष, शांति

का एक अंग जिससे इच्छरेखा

आदि का विचार किया जाता है ।

समाय सके-समा सके ; (इस तरह

का रूप भी भट्टजी की हिन्दी की

व्यास विशेषता है । इसी तरह से

“जाय सके,” “खाय सके”

इत्यादि ।)

लल्लोपत्तो-आपल्ला, अनुशासन ।

गुञ्जुर-(गं-गुञ्जुर) धर्म का दोष

निमित्त ।

सुससियत-विरोपता ।
 खार खाते हैं-गह करते हैं ।
 अरुहडपन-अकवडपन, यपरवादी
 दर्पदाह ज्वर-अभिमान रूपी
 जलन पैदा करने वाला ज्वर ।
 दाह-जलन ।

सदुपदेश शीतलोपचार-अच्छे
 अच्छे उपदेश रवी ठंडक पहुंचा
 देने वाल सामान ।

कारगर-(आगसी शब्द) उपयोगी,
 लाभकारक, असर करने वाली ।
 मीर, शिकार-(अमीर शिकार)

अमीरों का शिकार करने वाला ।
 जब पर अमीर क लडके
 को विगाड चुक तब दूसर, फिर
 तीसर इसी तरह अमीरों क
 लडके को विगाई कर इनक
 धन हाग जा थाप मजा लुगते

हैं ।

खसट-(सं० कौशिक) उल्लू, मुन
 हिस ।

कलामतों-(सं० कलावत) किसी
 क्रम या हुनर में उस्ताद ।

दोगले-(अरबी शब्द) धणशंकर ।

पांचवां प्रस्ताव ।

चहले-(सं० विचिल) कीचड ।।
 नेये-(सं० ने-नहा। मै (यय)-ज्वर)
 मई उमर, जवानी ।

दास्य-कठोर ।
 सुखद-सुख देने वाला ।
 ऊष्मी-गर्मी ।

कुसुम धान-जिसका बाल कुसुम
 (फल) का हा, जिसे पुष्प धवा
 भी कहते हैं, कामदेव ।

सलोनापन-खावण्य, सौनाई ।।
 उमङ्ग-इच्छा, जोश, उद्वलाम ।
 अनिर्वचनीय-अकथनीय, तिर्र का

वणन न हो सके ।

दास्य-(क्रा० शब्द) अंगूर ।

धयस्सधि-लडकपन और जवानी
 की उमर के मिलने का समय,
 नव यौवन ।

तररे-हुंसावर ।

अपिच-शक्ति ।

तरल-तरङ्गिणी तुल्य-बचव
 नगी क समान ।

तारण्यकुतर्की-जवानी रूपी दुष्ट
 कृत्रवादी ।
 खोखा (चोत)-गुद और उत्तम ।

अजहद-बहुत अधिक ।
 तितरी-निगाह, रश्मि ।
 बरहम-क्रोधित ।
 रस्तज्ञस-मेलगोत्र ।

तकरीब-(अ शब्द)व्यसव, प्रबता उ
 शीशे आलात-(का० शब्द)शशि
 क यत्र भाड, फानूस आदि ।

छठवां प्रस्ताव ।

किमकार्यं कदर्याणाम्-दूष्ट तथा
 नीच के लिए कोई पता पुर्ण काम
 नहीं है जिम व न कर सके ।
 सन्नहटा-नीरव, शब्दाभार ।

न पाचातवा मे स जल तदका
 परिभाषा मं लिखा है कि जल
 व तव है कि जो कुन, मं
 शीतल है ।

तिग्मांशु-(तिग्म तेज । अंशु-
 किरण) सूर्य ।
 तीक्ष्णी-(स० तीक्ष्ण) तेज ।
 खरतर-सज ।

दण्डायमान-सम्बा ।
 ललाटन्तप-ललाटे (सापडी) का
 तपानेवाला, अयन गम, चला
 पाड घामे ।

ब्रह्माण्ड-जगत्, ससार ।
 तच्चा-तेज ।
 लोहपिण्ड-लोहे का गोला ।
 अनुहार-समानता ।

चण्डांशु-(चण्ड-तेज, गम ।
 अंशु-किरण) सूर्य ।
 उच्चाटन-तेज के अभिचारों या
 प्रयोगा में म परनाश ।

स्थावर-अचल, स्थिर, जो चले नहा,
 जैसे पड इयादि ।
 जगम-चलन वाला, चरिष्यु, जेस
 मनुष्य, पशु इयादि ।

नयोदा-नवविधाहिता, नवबनु, मई
 दुलारिन ।
 रूपगर्विता-अपने सुन्दरपे क
 घमड में भरी हुई ।

यावत्-जितन ।
 त्वगिन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय, जिस इन्द्रि
 य स स्पर्श का ज्ञान ।
 शीतरपर्शप्रत्याप-कृपाद मुनि

जङ्गरेतिन-परिभ्रम करने वाली,
 महनतिन ।
 विक्षेप-प्रलल ।
 कर्कशा-लड़ाकिन, कटुभाषिणी ।

प्रेमालाप-प्रेम की बात चीत ।

सहिष्णुता-सहन करने की शक्ति

सौहार्द-प्रेम ।

अठपेली-(सं० अष्टकीड़ा) मन्ता

नी या मतगाली चाल ।

अकाल जलदोदय-असमय में

मेंघों की आकाशमंडल्य होना ।

कदय-नीच, तुच्छ हृदय ।

घिष्टपिष्ट-गन्धिरा मेल जोल, गन्धिरा

मिश्रता ।

“एकेनापि, कुलमः”-(“सय”

के ध्यान पर “सय” पदिय)

किसी एक खोडर में रक्तो हुइ

आग में जैम कुलयन जल जाता

है वैसे कुल में एक कुपुत्र के उप

जने पर समस्त घण का वश-

नष्ट हो जाता है ।

केटे-(सं० कंगीर) नया पोधा का

अकुर, नवयुवक ।

गुलदुरै-आनन्द, भोगविशाल ।

निर्गन् गोडिभक्तपुष्प-वन्द्यूलजो

गुणधन रहने से फेंक दिया

गया हो ।

ठौर-(सं० ध्यान) जगह ।

कुलप्रसून-उत्तम-वंश में पैदा

हुआ ।

नटघट-भूत, कपटी ।

तमाशबीनी-(अ० तमाशा श०

बीन-देवना) प्यारी ।

घारजिलासिनी और, घार घ

निता-(स० वार-उमूह, सब-

साधारण, विलासिनी या वनिता-

बी) समूह भर का बी; वरदा ।

घलीअहद-ध्यानापन्न, बारिस ।

उद्धाटन-प्रगट करना, खोल देना ।

सातवां प्रस्ताव ।

सन्तति, पुण्य कर्मणि-वाप

दादों के पुण्य कर्म में सतान की

उन्नति और प्रशंसा होता है ।

ईशान कोन-पूर और उत्तर के

बीच की दिशा ।

देवखात-किसी मन्दिर के पास

का कुट्टा ।

इलका-घरा ।

लहलहे-विक्रमित, खर ।

विटप-टप ।

आतप-धाम ।

जियारत-पूजा ।

परिशिष्ट-बची हुई ।

